कृष्णभावनामृत

सर्वोत्तम योग-पद्धति



कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

श्री श्री गुरु गौराङ्गौ जयतः

कृष्णभावनामृत

सर्वोत्तम योग-पद्धति

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लि आमंत्रित हैं :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम
जुहू, मुंबई ४०० ०४९

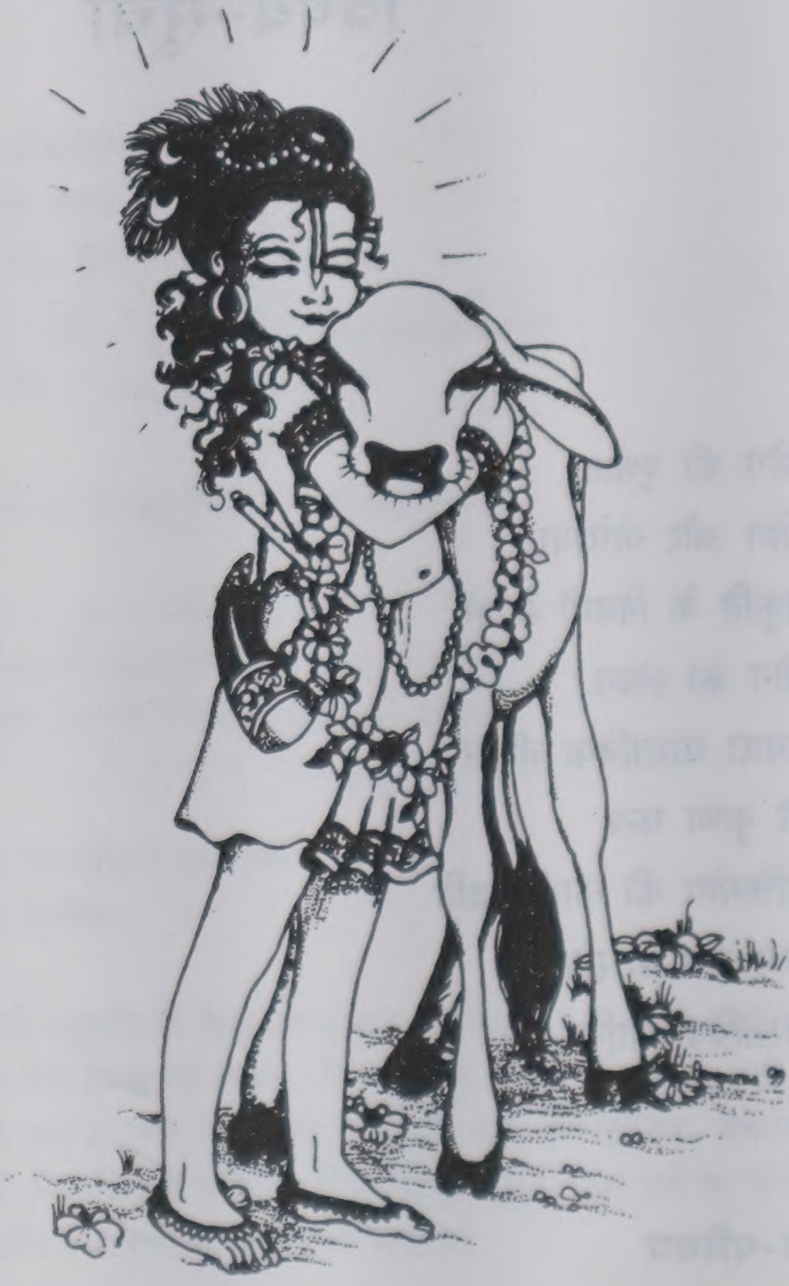
ई-मेल : bbtmumbai@pamho.net
वेब : www.bbtindia.net

The Topmost Yoga System (Hindi)

प्रथम मुद्रण : ५,००० प्रतियाँ
दूसरे से सोलहवाँ मुद्रण तक : १,३२,००० प्रतियाँ
सत्राहवँ मुद्रण, अगस्त २००६ : ५०,००० प्रतियाँ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट-मुंबई के लिए भीम दास द्वारा प्रकाशित एवं उ ग्राफिक्स प्रिन्टर्स प्रा. लि., सेनापती बापट मार्ग, लोअर परेल, मुंबई ४०० ० में मुद्रित।

विषय-सूची



१

योग की पूर्णता

भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* के छठे अध्याय में सर्वोत्तम योगपद्धति का वर्णन करते हैं। वहाँ पर उन्होंने हठयोग पद्धति की व्याख्या की है। कृपया स्मरण रखें कि *भगवद्गीता* के आधार पर ही हम इस कृष्णभावनामृत अभियान का प्रचार कर रहे हैं। यह मनगढ़न्त नहीं है। भक्तियोग एक प्रामाणिक पद्धति है और यदि आप भगवान् के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहते है, तो आपको इस भक्तियोग पद्धति को अपनाना होगा, क्योंकि *भगवद्गीता* के छठे अध्याय में निष्कर्षतः कहा गया है कि परम श्रेष्ठ योगी वही है जो अन्तर्मन में सदैव कृष्ण का स्मरण करता रहता है।

परम अधिकारी, कृष्ण ने अष्टांगयोग पद्धति की संस्तुति की है। इस योग-पद्धति का पहला चरण है, अत्यन्त पवित्र और एकान्त स्थान का चुनाव करना। अष्टांग ध्यानयोग का अभ्यास फैशन से प्रभावित आधुनिक महानगरों में नहीं किया जा सकता। यह सम्भव नहीं है। यही कारण है कि भारत में जो योगी योगाभ्यास करने में गम्भीर हैं, वे दूर हिमालय में बसे अत्यन्त एकान्त स्थान हरिद्वार में चले जाते हैं। वहाँ जाकर वे एकान्त में रहते हैं एवं आहार और निद्रा की संयमित प्रक्रिया का पालन करते हैं। कामाचार का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उन विधि-विधानों का दृढ़तापूर्वक पालन करना पड़ता है। मात्र व्यायाम का प्रदर्शन करना योग की पूर्णता नहीं है। योग का अर्थ है इन्द्रिय-निग्रह। यदि आप अनियन्त्रित

रूप से इन्द्रियों के विषय भोग में संलग्न करेंगे किन्तु साथ साथ योगाभ्यास का प्रदर्शन करेंगे, तो आप कभी सफल नहीं ह पहले आपको एकान्त स्थान का चुनाव करना होगा और बैठकर अर्धनिमीलित नेत्रों से नासिका के अग्रभाग में दृष्टि एकाग्र करना होगा। आप अपनी मुद्रा नहीं बदल सकते। ऐसे अ विधि-विधान हैं, सम्भवतया जिनका पालन आज नहीं किया सकता।

आज से ५,००० वर्ष पूर्व भी, जब विश्व की परिस्थि भिन्न थीं, तब भी यह योग-पद्धति व्यावहारिक नहीं थी। तक कि अर्जुन जैसे महापुरुष, जो राजकुल के शूरवीर थे, भगवान् कृष्ण के परम अन्तरंग सखा थे और निरन्तर उनके रहते थे, स्वयं कृष्ण के मुख से योग-पद्धति का वर्णन सु कहने लगे, "हे कृष्ण! मैं इसका पालन करने में असमर्थ उन्होंने स्पष्ट रूप में स्वीकार किया, "मेरे लिए ये विधि-वि एवं मन को नियन्त्रित करने के लिए यह अभ्यास करना स नहीं है।" तब हमें विचार करना होगा: जब ५,००० वर्ष अर्जुन जैसे पुरुष ने इस अष्टांगयोग-पद्धति का अभ्यास कर अपनी असमर्थता प्रकट की, तब आज हम इसका अभ्यास कर सकते हैं?

इस युग में, मनुष्य अल्पायु हैं। भारत में, मनुष्य की अ आयु केवल पैंतीस वर्ष ही है। आपके देश में इससे अधिव सकती है। परन्तु वास्तव में, जबकि आपके दादा सौ वर्षों जीवित रहे, आप इतनी लम्बी आयु नहीं जी सकते। ये परिवर्तित होती रहती हैं। आयु घटती ही जायेगी। शास्त्रों में भविष्यव की गयी है कि इस युग में मनुष्य की आयु, उसकी करुणा

उसकी बुद्धि का निरन्तर ह्रास ही होता जाएगा। मनुष्य बहुत शक्तिशाली नहीं हैं, उनकी जीवन-अवधि बहुत ही कम है। हम हमेशा चिन्तित रहते हैं और हमें वास्तव में आध्यात्म-विज्ञान का कोई ज्ञान नहीं है।

उदाहरणार्थ, विश्वभर में फैले सैकड़ों और हजारों विश्वविद्यालयों में ज्ञान-विज्ञान का ऐसा कोई भी विभाग नहीं है, जहाँ आत्मविज्ञान की शिक्षा दी जाती हो। वास्तव में, हम सभी जीवात्मा हैं। *भगवद्गीता* से हमें ज्ञात होता हैं कि वर्तमान जीवन में भी हम एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण कर रहे हैं। एक समय हम सबका शरीर एक शिशु-शरीर था। कहाँ गया वह शरीर? वह अब नहीं रहा। इस समय मैं एक वृद्ध मनुष्य हूँ, परन्तु मुझे अभी भी स्मरण है कि मैं एक समय शिशु था। मुझे अभी भी स्मरण है कि जब मैं लगभग छह महीने का था, तो अपनी दीदी की गोद में लेटा करता था और वह कुछ बुनती रहती थी और मैं खेलता रहता था। जब मैं इसे स्मरण रख सकता हूँ, तो प्रत्येक व्यक्ति यह स्मरण रख सकता है कि एक समय में उसका शरीर शिशु-शरीर था। शिशु-शरीर के बाद मुझे बालक का शरीर प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् मुझे युवा-शरीर प्राप्त हुआ एवं अब मैं इस (वृद्ध) शरीर में हूँ। वे शरीर कहाँ हैं? वे अब नहीं रहे। मेरा यह शरीर भिन्न है। *भगवद्गीता* में वर्णन किया गया है कि जब मैं इस शरीर का त्याग करूँगा, तब मुझे एक अन्य शरीर स्वीकार करना पड़ेगा। यह समझना बहुत सरल है। मैंने कई शरीर परिवर्तित किये हैं, केवल बाल्यावस्था से कौमार्य और यौवन तक ही नहीं, परन्तु चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से हम हर क्षण अप्रत्यक्ष रूप से शरीर परिवर्तित करते रहते हैं। यह प्रक्रिया सूचित करती है कि आत्मा

नित्य है। यद्यपि मैंने अनेक शरीर परिवर्तित किये हैं, तथापि अपने शिशु-शरीर तथा बाल्य-शरीर का स्मरण है—मैं वही व्य हूँ, वही आत्मा हूँ। उसी प्रकार, अन्ततः जब मैं यह शरीर परिव करूँगा, तब मुझे दूसरा शरीर ग्रहण करना ही पड़ेगा। यह स सिद्धान्त *भगवद्गीता* में वर्णित किया गया है। हर व्यक्ति इस विचार कर सकता है, एवं इस क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसन्धान वि जाना चाहिए।

हाल ही में मुझे टोरंटो से एक चिकित्सक का पत्र मि उन्होंने सुझाव दिया कि शरीर भी है और आत्मा भी है। उनके साथ पत्र-व्यवहार किया। वस्तुतः यह एक तथ्य है। आ का अस्तित्व है। इस विषय में अनेक प्रमाण न केवल वै साहित्य से बल्कि सामान्य अनुभव से भी दिये जा सकते आत्मा है और यह आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्र करती है, किन्तु दुर्भाग्यवश विश्वविद्यालयों में इस विषय पर ग अध्ययन की व्यवस्था नहीं है। यह बहुत अच्छी बात नहीं *वेदान्त-सूत्र* में कहा है, *मनुष्य के इस शरीर का उद्देश्य अ अर्थात् परम सत्य की खोज करना है*। इस भौतिक जगत् में आध्याि सिद्धान्तों की खोज के लिए ही योगपद्धति का अभ्यास उप किया जाता है। स्वयं भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* में खोज इस प्रक्रिया की संस्तुति की है। जब अर्जुन ने कहा, "जिस हठयोग-प की संस्तुति आपने की है, उसका अभ्यास करना मेरे लिए स नहीं है," तो कृष्ण उसे आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि योगियों में सर्वश्रेष्ठ है उन्हों ने उसे आश्वस्त किया कि वह ह का अभ्यास करने में असमर्थ होने की चिन्ता न करे। और भी बताते हैं, "विभिन्न प्रकार के सभी योगियों अर्थात् हठयो

ज्ञानयोगियों, ध्यानयोगियों, भक्तियोगियों और कर्मयोगियों में से तुम्ही सर्वश्रेष्ठ योगी हो। जो मनुष्य अपने अन्तर्मन में निरन्तर मेरा ध्यान करता है, वह सर्वश्रेष्ठ योगी है।''

वे कौन है, जो हमेशा अपने अन्तर्मन में कृष्ण का ध्यान कर सके? यह समझना अत्यन्त सरल है। यदि आप किसी से प्रेम करते है तो आप सदेव उसी के ध्यान में मग्न रह सकते हैं, अन्यथा यह सम्भव नहीं है। यदि आप किसी से प्रेम करते हों तो स्वाभाविक है कि आप सदैव उसी का ध्यान करेंगे। यह *ब्रह्म-संहिता* में बताया गया है। जो भगवान् कृष्ण से प्रेम करते हैं, वे सदैव उन्हीं के ध्यान में तल्लीन रह सकते हैं। जब भी मैं कृष्ण के विषय में कुछ कहूँ तो आपको समझना चाहिए कि वे भगवान् हैं। कृष्ण का दूसरा नाम है, श्यामसुन्दर। इसका अर्थ है मेघ के समान श्याम और सुन्दर। *ब्रह्म-संहिता* के एक श्लोक में लिखा है कि जो भी सन्त श्यामसुन्दर कृष्ण से प्रेम करते हैं, वे हमेशा अन्तर्मन में भगवान् का ही ध्यान करते हैं। वस्तुतः जब कोई व्यक्ति योग पद्धति के अनुसार, समाधि की अवस्था तक पहुँचता है तो वह निरन्तर अपने अन्तर्मन में भगवान् विष्णु के स्वरूप का ही ध्यान करता है। वह उसी ध्यान में मग्न रहता है।

श्यामसुन्दर कृष्ण आदि विष्णु हैं, ऐसा *भगवद्गीता* में कहा गया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव सभी देवी-देवता भगवान् कृष्ण में सम्मिलित हैं। वैदिक ग्रन्थों के अनुसार पहले वे बलदेव के रूप में अपना विस्तार करते हैं—बलदेव संकर्षण के रूप में, संकर्षण नारायण के रूप में, तथा नारायण विष्णु (*महाविष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु और क्षीरोदकशायी विष्णु*) के रूप में विस्तार करते है। ये वैदिक कथन हैं। हम समझ सकते हैं कि कृष्ण ही आदि

विष्णु श्यामसुन्दर हैं।

यह पूर्ण पद्धति है। जो हमेशा अपने भीतर कृष्ण का ध्य
करता है, वह श्रेष्ठ योगी है। यदि आप योग में पूर्णता प्राप्त क
चाहते हैं तो मात्र विधि-विधान के पालन से संतुष्ट न रहें। आप
और आगे जाना होगा। वास्तव में योग की पूर्णता तब प्राप्त हो
है, जब आप समाधि की अवस्था में पहुँचकर अपने अन्तर्मन
सदैव भगवान् के विष्णु रूप का अविचल भाव से ध्यान क
हैं। इसलिए योगी एकान्त में चले जाते हैं और वहाँ जाकर स
इन्द्रियों और मन को संयमित करते हुए और भगवान् विष्णु
पूर्ण रूप से ध्यान एकाग्र करते हुए समाधि की अवस्था में प
जाते हैं। यही योग की पूर्णता कहलाती है। वास्तव में यह योग-प
अत्यन्त कठिन है। कुछ विरले व्यक्तियों के लिए ही यह सम
हो सकती है। किन्तु सामान्य व्यक्ति के लिए शास्त्रों में इस
संस्तुति नहीं की गई है—

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा।।"

अर्थात् कलियुग में मुक्ति का एकमात्र साधन भगवान के
का कीर्तन करना है। अन्य कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं
[*बृहन्नारदीय पुराण*]

योग-पद्धति के लिए स्वर्णयुग सतयुग में जिस रूप की संस
की गई थी, वह —निरन्तर विष्णु पर ध्यान करना। त्रेतायुग
महान् यज्ञों को संपन्न करके व्यक्ति योगाभ्यास कर सकता
इसके अगले युग द्वापर में व्यक्ति श्रीविग्रह की अर्चना से
प्राप्त कर सकते थे। वर्तमान युग कलियुग कहलाता है। कलि

का अर्थ है कलह और मतभेद का युग। हर व्यक्ति का एक दूसरे से मतभेद है। सबके अपने सिद्धान्त हैं, अपना दर्शन है। यदि मैं आपसे सहमत नहीं तो आप मुझसे झगड़ते हैं। यही कलियुग का लक्षण है। इसलिए इस युग में केवल पवित्र नाम के कीर्तन के ही विधान की संस्तुति की गई है। भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन मात्र से ही मनुष्य पूर्ण आत्म-साक्षात्कार की उस अवस्था को प्राप्त कर सकता है, जिसे सतयुग में योग-पद्धति से, त्रेता युग में महान् यज्ञों के अनुष्ठान से और द्वापर युग में विशाल स्तर पर मन्दिर में श्रीविग्रह की अर्चना से प्राप्त किया जा सकता था। वही पूर्णता आज हरि-कीर्तन की सरल विधि से प्राप्त की जा सकती है। हरि का अर्थ है भगवान् और कीर्तन का अर्थ है गुणगान करना।

शास्त्रों में इस विधि की संस्तुति की गयी है और आज से ५०० वर्ष पूर्व चैतन्य महाप्रभु ने हमें यही विधि दी थी। वे नवद्वीप नामक एक नगर में प्रकट हुए थे। यह स्थान कलकत्ता के उत्तर में लगभग साठ मील की दूरी पर है। वहाँ हमारा एक मन्दिर भी है। भक्त लोग आज भी वहाँ जाते हैं। यह एक पवित्र तीर्थस्थल है। चैतन्य महाप्रभु वहीं प्रकट हुए थे। और उन्होंने उसी स्थान पर विशाल सामूहिक संकीर्तन आंदोलन प्रारम्भ किया था जो कि बिना किसी भेदभाव के सम्पन्न किया जाता है। उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि यह संकीर्तन-आन्दोलन एक दिन सारे विश्व में फैलेगा और हरे कृष्ण महामन्त्र इस पृथ्वी के प्रत्येक गाँव और शहर में गाया जाएगा। भगवान् चैतन्य महाप्रभु के आदेशों के अनुरूप उनके चरण-चिह्नों पर चलते हुए हम हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए इस संकीर्तन आन्दोलन को प्रचारित करने में लगे हुए हैं और

यह सर्वत्र सफल प्रमाणित हो रहा है। मैं इसका प्रचार विशे
रूप से विदेशों में, युरोप के सभी देशों में, अमेरिका, जापा
कनाडा, आस्ट्रेलिया और मलेशिया आदि देशों में कर रहा है
मैने इस संकीर्तन-आन्दोलन का आरम्भ कर दिया है और अ
इसके केन्द्र विश्वभर में स्थापित हो गये हैं। हमारे सभी ८० केन्
को महान् उत्साह से स्वीकारा जा रहा है। मैंने भारत से
युवक-युवतियों का आयात नहीं किया है, परन्तु ये लोग इस आन्दोल
को गम्भीरता से अपना रहे हैं, क्योंकि यह उनकी आत्मा
सीधे प्रेरणा देता है।

हमारे जीवन के विभिन्न सोपान हैं, शारीरिक पक्ष, मानसि
पक्ष, बौद्धिक पक्ष और आध्यात्मिक पक्ष। वस्तुतः हमारा सम्ब
पक्ष से है। जो मनुष्य शारीरिक पक्ष पर मुग्ध रहते हैं, वे कुत्ते-बि
से श्रेष्ठ नहीं हैं। यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि "मैं
यह शरीर हूँ" तो हम कुत्ते-बिल्लियों से बेहतर नहीं हैं क्यों
उनकी विचारधारा ऐसी है। हमे यह समझना होगा, "मैं यह
शरीर नहीं हूँ।" जैसे भगवान् कृष्ण, *भगवद्गीता* में अपने उप
के आरम्भ में अर्जुन को इसी बात पर बल देना चाहते थे "स
पहले यह समझने का प्रयत्न करो कि तुम कौन हो। तुम
देहात्मबुद्धि में क्यों शोक कर रहे हो? तुम्हें लड़ना हैं, तुम्हें अ
बन्धु-बान्धवों और भतीजों से भी लड़ना होगा; तुम शोक
हो। पहले तो तुम्हें यही समझना होगा कि तुम शरीर हो
नहीं।" यहीं से *भगवद्गीता* का आरम्भ होता है। कृष्ण अ
को समझाने का प्रयत्न करते थे कि वह शरीर नहीं है। यह उ
मात्र अर्जुन के लिए ही नहीं, मानवमात्र के लिए था। सबसे प
हमें यही सीखना होगा, "मैं यह शरीर नहीं हूँ," "मैं जीव

हूँ'' और यही वेदों का उपदेश है।

जैसे ही आप इस तथ्य से पूरी तरह आश्वस्त होते हैं कि आप शरीर नहीं हैं तो वह ब्रह्म-साक्षात्कार की ब्रह्मभूतावस्था कहलाती है। यही वास्तविक ज्ञान है। आहार, निद्रा और मैथुन के ज्ञान में प्रगति करना पाशविक ज्ञान है। एक कुत्ता भी जानता है कि आहार, निद्रा और मैथुन कैसे किया जाता है और अपनी रक्षा कैसे की जाती है। यदि हमारी शिक्षा इसी सीमा तक है (कुत्ता अपने स्वभाव के अनुसार भोजन करता है, किन्तु हम एक सुन्दर स्थान पर सुन्दर टेबल पर स्वादिष्ट पकवान खाते हैं) तो यह प्रगति नहीं हैं। फिर भी सिद्धान्त तो भोजन का ही है। इसी तरह आप छह मंजिले या १२२ मंजिले भवन के सुन्दर कक्ष में सो सकते हैं और कुत्ता सड़क पर सो सकता है, किन्तु आपके और कुत्ते के सोने में कोई अन्तर नहीं है। आपको यह मालूम नहीं पड़ सकता कि आप किसी गगनचुंबी भवन में सो रहे हैं या जमीन पर, क्योंकि आप तो अपने बिस्तर से कहीं दूर सपनों की दुनिया में खोये रहते हैं। आप भूल चुके होते है कि आपका शरीर बिस्तर पर है और आप सपनों की दुनिया में हवा में उड़ रहे हैं। इसलिए सोने की बेहतर व्यवस्था करना प्रगति की परिचायक नहीं हो सकती। इसी प्रकार कुत्ते के लिए मैथुन की कोई सामाजिक रीति नहीं है। जब भी वह कुतिया को देखता है, वह वहीं सड़क पर मैथुन करने लगता है। आप एकांत स्थल में शान्त भाव से मैथुन कर सकते हैं (हालाँकि अब तो लोग कुत्ते की तरह मैथुन करना भी सीखने लगे हैं), किन्तु मैथुन तो करते ही हैं। यही बात आत्मरक्षा पर भी लागू होती है। कुत्ता अपने बचाव के लिए दाँतों और नाखूनों का प्रयोग करता है। और आप अणु बम का प्रयोग करते

हैं। किन्तु उद्देश्य है आत्मरक्षा। इसलिए शास्त्र कहता है कि मानव-जीव
शारीरिक माँगों के इन चार मूलभूत सिद्धान्तों के लिए ही न
है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य को परम सत्य को जानने
जिज्ञासा रखनी चाहिए। और इसी शिक्षा की आज कमी है।

वैदिक सभ्यता के अनुसार ब्राह्मण वही है, जो सुशिक्षित
और आत्मतत्त्व का ज्ञान रखता हो। भारतवर्ष में ब्राह्मणों को पण्डि
कहकर सम्बोधित किया जाता है। वस्तुतः वे जन्मना ब्राह्मण न
हो सकते। ब्राह्मण होने के लिए उनसे अपेक्षा की जाती है
आत्मा क्या है, उन्हें इसका ज्ञान हो।

जन्म से प्रत्येक व्यक्ति एक शूद्र—चौथी श्रेणी का मनुष्य—हो
है, किन्तु पवित्रीकरण की प्रक्रिया से उसका सुधार किया जा सक
है। पवित्रीकरण की प्रक्रियाओं के दस प्रकार हैं। व्यक्ति इन स
प्रक्रियाओं का पालन करता हुआ अन्त में आध्यात्मिक गुरु
पास जाता है जो उसके दूसरे जन्म की मान्यता के रूप में
यज्ञोपवीत प्रदान करते हैं। पहला जन्म उसके माता-पिता से हो
है, दूसरा आध्यात्मिक गुरु एवं वैदिक ज्ञान से। यही दूसरा ज
कहलाता है। उस समय शिष्य को वेद से प्रसिद्ध ज्ञान का अध्य
करने तथा उसे समझने का अवसर दिया जाता है।

सभी वेदों का अच्छी तरह से अध्ययन करने से वह वास्
में अनुभव करता है कि आत्मा क्या है और भगवान् के स
उसका क्या सम्बन्ध है। उसके बाद वह ब्राह्मण हो जाता
निराकार ब्रह्मज्योति के ज्ञान की उस स्थिति से ऊपर उठकर
भगवान विष्णु को जानने के स्तर पर आ जाता है; तब
वैष्णव बन जाता है। यही पूर्णता की प्रक्रिया है।

२

योग और योगेश्वर

योग का अर्थ है आत्मा और परमात्मा या परम तत्त्व और सूक्ष्म जीवों का जुड़ना। भगवान् श्रीकृष्ण ही वे परम भगवान् हैं। इसलिए योग का अन्तिम लक्ष्य होने के कारण कृष्ण का नाम योगेश्वर है—योग के स्वामी।

भगवद्गीता के अन्त में कहा गया है, "जहाँ कृष्ण हैं और धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहाँ विजय निश्चित है।"

भगवद्गीता महाराज धृतराष्ट्र के सचिव संजय द्वारा किया गया आख्यान है। यह रेडियो की वायु-तरंगों के समान है। प्रेक्षागृह में नाटक खेला जा रहा है और आप अपने कमरे में बैठे उसे सुन सकते हैं। आज जिस प्रकार हमारे पास यान्त्रिक व्यवस्था है, उस काल में भी ऐसी कोई व्यवस्था थी हालाँकि उस समय कोई यन्त्र नहीं था। फिर भी धृतराष्ट्र के सचिव राजप्रासाद में बैठे हुए युद्धभूमि की गतिविधियों को देख रहे थे और महाराज धृतराष्ट्र को, जो अन्धे थे, युद्ध का वर्णन सुना रहे थे। अन्त में संजय निष्कर्ष देते हुए कहते हैं कि कृष्ण भगवान् हैं।

योग-पद्धति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि कृष्ण का नाम योगेश्वर है। योगेश्वर से बड़ा योगी भला कौन हो सकता है और कृष्ण योगेश्वर हैं। योग के अनेक विभिन्न प्रकार हैं। योग का अर्थ है पद्धति और योगी का अर्थ है वह व्यक्ति जो उस पद्धति का अभ्यास करता हो। योग का अन्तिम लक्ष्य है भगवान्

कृष्ण को जानना। इसलिए कृष्णभावनामृत का अर्थ है, योग सर्वोत्तम पद्धति का अभ्यास करना।

भगवान् कृष्ण ने *गीता* में अपने परम अन्तरंग सखा अ को सर्वोत्तम योग-पद्धति के बारे में बतलाया था। आरम्भ में भग ने कहा है कि यह पद्धति केवल उसी व्यक्ति के द्वारा अपन जा सकती है जो उससे आसक्त हो चुका हो। कृष्णभावन योग-पद्धति एक सामान्य व्यक्ति द्वारा नहीं अपनायी जा सक जो कृष्ण से आसक्त न हो, क्योंकि यह एक विशिष्ट और सर्वो योग-पद्धति है—भक्तियोग।

प्रत्यक्ष आसक्ति के पाँच प्रकार हैं और परोक्ष आसक्ति के स परोक्ष आसक्ति भक्ति नहीं है। प्रत्यक्ष आसक्ति भक्ति कहलाती यदि कृष्ण के प्रति आपकी आसक्ति प्रत्यक्ष विधि से है तो भक्ति कहेंगे और यदि आपकी आसक्ति परोक्ष विधि से है यह भक्ति नही कहलायेगी, परन्तु आसक्ति तो यह भी है। राजा कंस कृष्ण के मामा थे और यह चेतावनी दी गयी कि कंस का संहार उसकी बहन के किस एक लड़के द्वारा जाएगा। इसलिए वह अपनी बहन के लड़कों के प्रति चिंतित उठा और उसने अपनी बहन को जान से मार डालने का नि किया। परन्तु कृष्ण की माँ देवकी को उसके पति वसुदेव ने लिया। उन्होंने कंस के साथ समझौता किया और कंस के प्रस्ताव रखा, "तुम अपनी बहन के बेटे से भयभीत हो, तुम्हारी बहन तो तुम्हें खुद मारने वाली नहीं है", इसलिए उ प्रार्थना की कि "तुम अपनी बहन की हत्या न करो औ तुम्हें वचन देता हूँ कि उसके जितने भी पुत्र होंगे वे तुम्हारे लाए जाएँगे। और यदि तुम चाहो तो उन्हें तुम मार सकते हो

वसुदेव ने यह प्रस्ताव इसलिए रखा था कि इससे शायद उनकी पत्नी के प्राण बच जाएँ और वसुदेवजी ने विचार किया, "जब देवकी का पुत्र उत्पन्न होगा तो कंस का हृदय शायद परिवर्तित हो जाए।" किन्तु कंस इतना क्रूर असुर था कि उसने देवकी के सभी पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया। ऐसा कहा गया था कि उसकी बहन का आठवाँ पुत्र उसका संहार करेगा। इसलिए जब कृष्ण माँ के गर्भ में थे तो कंस हमेशा कृष्ण के बारे में सोचता रहता था। आप कह सकते हैं कि वह कृष्णभावनाभावित नहीं था, किन्तु वास्तव में वह था, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, प्रेम के कारण भी नहीं, बल्कि शत्रु के रूप में। वह शत्रु के रूप में कृष्णभावनाभावित था। इसलिए यह भक्ति नहीं है। कृष्ण के सखा के रूप में, कृष्ण के सेवक के रूप में, उनके माँ-बाप या प्रेमी के रूप में की गई भक्ति कृष्णभावनाभावित हो सकती है।

आप कृष्ण से अपने प्रेमी या पुत्र के रूप में, मित्र या स्वामी के रूप में या फिर परम उत्कृष्ट के रूप में प्रेम कर सकते हैं। कृष्ण के साथ इन पाँच प्रकार के प्रत्यक्ष सम्बन्धों को भक्ति कहा गया है। इनसे भौतिक लाभ की प्राप्ति नहीं होती।

भगवान् को पुत्र के रूप में स्वीकार करना पिता के रूप में स्वीकार करने से कहीं अधिक श्रेष्ठ है; इसमें अन्तर भी है। पिता और पुत्र के सम्बन्धों के अन्तर्गत पुत्र पिता से कुछ पाने की लालसा रखता है, जबकि पिता के साथ पुत्र का सम्बन्ध होने पर पिता पुत्र को हमेशा कुछ-न-कुछ देने को तत्पर रहता है। इसलिए भगवान् या कृष्ण के साथ पुत्र का सम्बन्ध पिता के सम्बंध की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ है क्योंकि वह सोचती है कि, "यदि

मैं भगवान् को पिता के रूप में स्वीकार करता हूँ तो मैं अ
आवश्यकताओं के लिए पिता के सामने हाथ फैलाऊँगा।'' प
यदि मैं श्रीकृष्ण को पुत्र के रूप में स्वीकार करूँगा तो उ
बचपन के प्रारम्भ से ही मेरा कार्य होगा—उनकी सेवा कर
पिता पुत्र के जन्म से ही उस का अभिभावक होता है, इस
वसुदेव और देवकी की इस सम्बन्ध की भावना उदात्त है।

कृष्ण की धात्री माँ यशोदा सोचती हैं, ''यदि मैं कृष्ण
पर्याप्त भोजन नहीं दूँगी तो वह मर जाएगा।'' वह यह भूल
हैं कि कृष्ण परमेश्वर हैं और त्रिलोक के आधार हैं। वह
भी भूल जाती हैं कि भगवान् कृष्ण ही जीवों की सभी आवश्यक
की पूर्ति करते हैं। वही भगवान् यशोदा के पुत्र के रूप में अव
हुए हैं और यशोदा सोच रही है, ''यदि मैं उसे पर्याप्त भ
नहीं दूँगी तो वह मर जाएगा।'' यही प्रेम है; वह यह भूल
हैं कि कृष्ण भगवान् ही एक शिशु के रूप में उनके सामने
हुए हैं।

आसक्ति का यह सम्बन्ध अत्यन्त उत्कृष्ट एवं पवित्र है।
समझने में समय लगता है, परन्तु एक ऐसी स्थिति है, जह
भगवान् से यह कहने के बदले, ''हे भगवान् हमें प्रतिदि
रोटी दीजिए,'' हम यह सोच सकते हैं कि यदि आप उन्हें
न देंगे तो भगवान् मर जाएँगे। यह परम प्रेम का आनन्द
कृष्ण के प्रेमियो में से उनकी सर्वोच्च भक्त एंव प्रेमिका
राधारानी व कृष्ण के बीच भी ऐसा ही सम्बन्ध है। यशोदा
उन्हें मातृ-भाव से प्रेम करती हैं, सुदामा मित्र के रूप में
प्रेमी हैं। अर्जुन भी मित्र के रूप में उनके प्रेमी हैं। कृ
विभिन्न प्रकार के कोटि-कोटि प्रत्यक्ष भक्त हैं।

इसलिए यहाँ वर्णित योग-पद्धतियाँ भक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त करती हैं और भक्ति योग का अभ्यास उन सभी व्यक्तियों के द्वारा किया जा सकता है, जिन्होंने कृष्ण के प्रति आसक्ति का विकास कर लिया हो। अन्य व्यक्तियों के लिए यह सम्भव नहीं है। और यदि कोई कृष्ण के साथ आसक्ति भाव विकसित कर लेता है तो यह सम्बन्ध ऐसा होगा कि वह कृष्ण को पूरी तरह जान लेगा। फिर भी हम भगवान् को अपने अनेक सिद्धान्तों और अनुमानों से समझने का प्रयत्न कर सकते हैं, हालाँकि वह अपने-आप में एक कठिन काम है। हम कह सकते है कि हमने भगवान् को जान लिया है, परन्तु उनको यथार्थ में जानना सम्भव नहीं है, क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ सीमित हैं और वे असीम हैं।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि हमारी सभी इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं। हम भौतिक जगत् को भी पूर्ण रूप में नहीं जान सकते। आपने रात में आकाश में कितने ही ग्रह-नक्षत्र देखे होंगे, किन्तु आप उनके बारे में नहीं जानते। आप तो यह भी नहीं जानते कि चन्द्रमा क्या है? जबकि मनुष्य कितने ही वर्षों से स्पुतनिक द्वारा वहाँ जाने की कोशिश कर रहा है। इस पृथ्वी ग्रह के विषय में भी हम यह नहीं जानते कि यहाँ पर कितनी विविध प्रकार की वस्तुएँ हैं। आप समुद्र या आकाश की ओर देखें तो मालूम पड़ेगा कि हमारी अनुभूति कितनी सीमित है। इसलिए हमारा ज्ञान अपूर्ण है। हमें इस बात पर सहमत होना ही पड़ेगा। सदैव हम मूर्खतापूर्ण ढंग से यह सोचें कि हमने हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और विज्ञान के क्षेत्र में काफी उन्नति कर ली है तो यह हमारी एक और मूर्खता है। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना सम्भव ही नहीं है।

और जब भौतिक जगत् को ही जानना सम्भव नहीं है, जि
हम प्रतिदिन अपनी आँखो से देखते हैं तो आध्यात्मिक ज
और भगवान् कृष्ण के बारे में क्या कह सकते हैं? वे परमब्र
स्वरूप हैं और उन्हें सीमित इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकत
तो फिर हम कृष्णभावनामृत के लिए क्यों इतना कष्ट उठा
हैं जब यह सम्भव ही नहीं है? और यदि ये अपूर्ण इन्द्रि
भगवान् कृष्ण का यथारूप साक्षात्कार नहीं कर सकतीं तो इस
उत्तर यह है कि यदि आप विनम्र बनते हैं, यदि आप अनुशी
करने की आध्यात्मिक भावना को विकसित कर लेते हैं और अ
उनके दास, मित्र, माता-पिता या प्रेमी की स्थिति स्वीकार
सकते हैं, यदि आप भगवान् की सेवा करना प्रारम्भ करते
तब आप उन्हें जानना प्रारम्भ कर सकते हैं।

आपकी सेवा का आरम्भ जिह्वा से होता है। कैसे? जि
से आप हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर सकते हैं और जि
से ही आप "कृष्णप्रसादम्" के रूप में आध्यात्मिक आहार
आस्वादन भी कर सकते हैं। इसलिए इस प्रक्रिया का प्रारम्भ
सरस ढंग से होता है। आप हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन
सकते हैं—

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।।

और जब कृष्ण की कृपा से आपको प्रसाद दिया जाय
आप श्रद्धा भाव से उसे ग्रहण करें। इसका परिणाम होगा
यदि आप विनम्र हो जाते हैं और यदि आप कीर्तन और
ग्रहण करने की इस सेवा को आरम्भ करेंगे तो भगवान्

स्वयं को आपके समक्ष प्रकट कर देंगे।

आप अनुमान से कृष्ण को नहीं जान सकते। आपकी इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं, इसलिए यह सम्भव नहीं है। किन्तु यदि आप सेवा का यह क्रम प्रारम्भ करेंगे तो यह सम्भव हो जाएगा—भगवान् कृष्ण स्वयं को आपके समक्ष प्रकट कर देंगे: "मैं ऐसा हूँ" ठीक उसी तरह जैसे कृष्ण अर्जुन के सामने प्रकट हुए थे। अर्जुन एक भक्त हैं और वह विनम्र है और उनका कृष्ण के साथ मित्र का सम्बन्ध है। इसलिए कृष्ण उनके सामने प्रकट हो जाते हैं।

उन्होंने *भगवद्गीता* का प्रवचन अर्जुन को सुनाया, न कि किसी वेदान्ती दार्शनिक मीमांसक को। आप पाएँगे कि—चौथे अध्याय के आरम्भ में कृष्ण कहते हैं, "वही प्राचीन योग पद्धति मैंने आज तुमसे कही है।" इसमें कहा गया है "तुम से।" अर्जुन एक क्षत्रिय योद्धा थे। वे गृहस्थ थे, संन्यासी भी नहीं थे—परन्तु ये सब भगवान् कृष्ण को जानने की योग्यताएँ नहीं हैं। मान लीजिए, मैं कहूँ कि मै संन्यासी हो गया हूँ, परन्तु यह वह योग्यता नहीं है कि जिससे मैं कृष्ण को जान सकूँगा। तो फिर आवश्यक योग्यता क्या है? वह यह है, "जिसने स्वयं में प्रेम और भक्ति से सेवा करने की भावना को विकसित किया है, केवल वही मुझे जान सकता है।" अन्य और कोई नहीं! बड़े-बड़े मीमांसक और विद्वान् भी नही; परन्तु एक बालक कृष्ण को जान सकता है, यदि उसमें कृष्ण के प्रति पूरी श्रद्धा है। इसलिए श्रद्धा और भक्ति व्यक्ति को वे योग्यताएँ प्रदान करती हैं।

केवल इसी श्रद्धा और सेवा से आप यह जान पाएँगे कि कृष्ण भगवान् हैं, इसलिए कृष्णभावनामृत का प्रचार करते हुए हम आपका और अपना समय बर्बाद नहीं करते क्योंकि हमें पूर्ण विश्वास

है कि कृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। सैद्धान्तिक या व्यावहारिक र
में आपको यह स्वीकार करना चाहिए कि कृष्ण परम-पुरुष
सैद्धान्तिक रूप से समझने के लिए धर्मग्रन्थ हैं। वैदिक साहि
से अथवा प्राचीन और अर्वाचीन काल के महान् भक्तों से अ
यह जान सकेंगे।

वर्तमान काल के लिए चैतन्य महाप्रभु हैं। चैतन्य महाप्रभु
महान् प्रमाण हैं। उनसे महान् अन्य कोई नहीं है। वे कृष्ण
लिए पागल से हो गए थे और उनके बाद उनके छह शिष्य गोस्वाम
विशेष रूप से जीव गोस्वामी, अपना अत्यन्त मूल्यवान् साहि
अपने पीछे छोड़ गये हैं। उन्होंने कृष्ण के विषय में विपुल साहि
की रचना की है। इसलिए शिष्य-परम्परा से आज हम इस स्थि
तक पहुँचे है और यदि आप प्राचीन इतिहास को पसंद क
हैं तो बहुत प्राचीन काल में व्यासदेव तक जा सकते हैं। क
जाता है कि वे ही *श्रीमद्भागवत* और कृष्ण सम्बन्धी अन्य साहि
के रचयिता हैं। *श्रीमद्भागवत* मात्र कृष्ण के वर्णन के अति
और कुछ नहीं है। व्यासदेव *भगवद्गीता* के भी रचयिता हैं। ग
भगवान् कृष्ण ने कही थी और व्यासजी ने उसे लिपिबद्ध क
महाभारत में सम्मिलित कर दिया।

इस प्रकार व्यासदेव भगवान् कृष्ण को परम पुरुष के रूप
स्वीकार करते हैं। *श्रीमद्भागवत* में उन्होंने कृष्ण के अनेक अव
का वर्णन किया है। उनके अनुसार कृष्ण के पच्चीस अवतार
और निष्कर्ष में वे कहते हैं कि जो भिन्न-भिन्न अवतार उ
वर्णित किये गये हैं वे सब भगवान् के अंश रूप हैं। किन्तु कृ
स्वयं ही भगवान् हैं। वे अंश नहीं है, शत-प्रतिशत भगवान्
तो इस प्रकार यहाँ प्रामाणिक अधिकारी का प्रमाण है।

और व्यावहारिक रूप में यदि हम शास्त्रों को मानते हैं तो यह भी जान सकते हैः कृष्ण से अधिक शक्तिमान और कौन हो सकता है? कृष्ण से अधिक सुन्दर और कौन हो सकता है? कृष्ण से अधिक यशस्वी और कौन हो सकता है? कृष्ण आज से ५,००० वर्ष पूर्व अवतरित हुए थे, परन्तु *श्रीमद्भगवद्गीता* के रूप में उनके ज्ञान की उपासना आज भी होती है। केवल हिन्दू या भारतीय ही इसकी उपासना नही करते प्रत्युत, सारे विश्व में इसका अध्ययन किया जाता है। आपके देश में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखे गये *भगवद्गीता* के लगभग पचास संस्करण मिलते हैं। इसी प्रकार, इंगलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, और दूसरे सभी देशों में आपको *गीता* के सैकड़ों संस्करण मिल जाएँगे। कृष्ण से अधिक प्रसिद्ध और कौन हो सकता है? इसके अनेक अन्य प्रमाण भी मिलते हैं। यदि आप शास्त्रों को मानते हों तो कृष्ण ने १६१०८ विवाह किये थे। और प्रत्येक पत्नी को रहने के लिए एक-एक राजप्रसाद दिया था। प्रत्येक पत्नी के दस-दस सन्तानें हुई थीं। और उन दस-दस संतानों से अनेक सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। इस प्रकार हमारे पास शास्त्रों के प्रमाण भी हैं। *ब्रह्म-संहिता* में भी कृष्ण को भगवान् के रूप में स्वीकार किया गया है। यह अत्यन्त प्राचीन धर्मग्रन्थ है और इसकी रचना ब्रह्माण्ड के पहले प्राणी ब्रह्मा जी द्वारा की गई मानी जाती है।

ब्रह्म-संहिता में लिखा है, *ईश्वरः परमः कृष्णः*। ईश्वर का अर्थ है भगवान्। भगवान् भी अनेक हैं। कहते हैं अनेक देवी-देवता भी हैं और परमब्रह्म भी। इसलिए *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है, *ईश्वरः परमः कृष्णः*। अर्थात् वे ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। *ईश्वरः परमः कृष्णः और सच्चिदानन्दविग्रहः*। अर्थात वे नित्य हैं, आनन्द

और ज्ञानमय हैं। आगे कहा गया है कि वे अनादि हैं। उन
कोई आदि नहीं है, बल्कि वे सभी के आदि हैं। *अनादिरादिर्गोविन्द*
गो का अर्थ है इन्द्रियाँ, गाय और भूमि। वे सारे भूलोक
स्वामी और सभी गायों के भी स्वामी हैं और सभी इन्द्रियों
स्रष्टा हैं।

हम इन्द्रिय-सुख के पीछे लगे हुए हैं, परन्तु हम इन्द्रिय-सु
की पूर्णता तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम अपने आनन्द
आदान-प्रदान कृष्ण के साथ करें। इसलिए कृष्ण का नाम *गोवि*
अर्थात् आदि-पुरुष भगवान् है।

वही भगवान् *गीता* में स्वयं अपने मुख से अपने विषय
अर्जुन को बताते हैं। आप कैसे कह सकते हैं कि अनुमान
या मीमांसा से भगवान् के विषय में कही गयी बात स्वयं कृ
द्वारा कही गयी बात से अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती है।?
सम्भव नहीं है। भगवान् के विषय में कृष्ण से अधिक जानक
और कोई नहीं दे सकता क्योंकि भगवान् स्वयं बोल रहा
जैसे आपके अपने बारे में आपसे अच्छा और कोई नहीं
सकता। इसलिए यदि आपको विश्वास है और आप सैद्धान्ति
या व्यावहारिक रूप में कृष्ण को भगवान् मानते हैं तो कृष्ण
भगवद्गीता में किये गये आत्मवर्णन से आप भगवान् को
सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

और यदि आप कृष्ण में विश्वास करते हैं तो इसके परिणामस्व
आप भगवान् को जान सकते हैं कि वे कैसे कार्य करते हैं, उ
शक्तियाँ कैसे कार्य करती हैं? वे कैसे प्रकट होते हैं? यह भौ
जगत क्या है? आध्यात्मिक जगत् क्या है? जीव क्या है?
और भगवान् का सम्बन्ध क्या है? इस प्रकार की कई बातें भ

साहित्य में पायी जाती हैं।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में तीन बातें हैं: प्रथम है भगवान् के साथ आपका सम्बन्ध, तब दूसरी बात, भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को समझने के बाद आप वैसा आचरण कर सकते हैं। जैसे कि एक स्त्री या पुरुष आपस में सम्बन्धित न हों; परन्तु ज्योंही यह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि एक पति है और दूसरी पत्नी, उनका व्यवहार आरम्भ हो जाता है।

एक बार भगवान् के साथ अपना सम्बन्ध जान लेने पर सामान्यतः लोग मानने लगते हैं, कि भगवान् उनका पिता है और पुत्र का काम है कि वह अपने पिता से आवश्यकता की वस्तुओं की माँग करे। परन्तु यह सम्बन्ध वस्तुतः निकृष्ट कोटि का है। यदि आप भगवान् को पूर्णतया जान लेते हैं तब आपके उनसे अन्तरंग सम्बन्ध भी बनते हैं। आपका अन्तरंग सम्बन्ध तभी प्रकट होगा जब आप पूर्णतया मुक्त हो जाएँगे। प्रत्येक प्राणी का भगवान् के साथ एक विशेष सम्बन्ध है, परन्तु हम अभी उसे भूले गए हैं। जब कृष्णभावनामृत या भक्ति की प्रक्रिया में यह सम्बन्ध प्रकट हो जाता है, तो आप जान लेंगे कि यही आपके जीवन की पूर्णता है। कृष्णभावनामृत एक महान् विज्ञान है। यह कोई प्रेम सम्बन्धी भावुकतापूर्ण कल्पना-मात्र नहीं है। यह *भगवद्गीता*, *वेदों* और *ब्रह्म-संहिता* में वर्णित वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है; तथा इसे चैतन्य महाप्रभु, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, नारद, असित तथा वेदव्यासजी जैसे महान् अधिकारियों ने स्वीकार किया है। कृष्णभावनामृत कोई सामान्य प्रेम या धनोपार्जन की क्रिया नही है; यह एक वास्तविकता है और यदि आप इसे गम्भीरता से अपनायेंगे तो आपका जीवन पूर्ण हो जाएगा।

भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं, "जो मनुष्य तत्त्व से मुझे जान
हैं, वह इस देह को त्याग कर इस संसार में दूसरा भौतिक श
लेनें के लिए फिर जन्म नहीं लेता।" तो उसका क्या होता है
वह कृष्ण के पास अपने घर, उनके परमधाम में, चला जा
है। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से लोगों को कृ
का ज्ञान कराता है। हम *भगवद्गीता* और वेदों जैसे प्रमाणित ग्र
पर आधारित कृष्ण के ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं। वेद का अ
है, "ज्ञान" और *वेदान्त* का अर्थ है, "ज्ञान का परम अन्त
ज्ञान का यह परम अन्त क्या है? वह है कृष्ण। *वेदैश्च सर्वैरह*
वेद्य; सभी वेदों को जानने का अन्तिम लक्ष्य कृष्ण है।
कई जन्मों के बाद प्राप्त होता है। अनेक जन्मों से ज्ञान का अनुशी
करके जब कोई जीव वास्तव में ज्ञानी बनता है, तभी वह कृ
के प्रति अपने आपको समर्पित करता है। वह कैसे समर्पण
सकता है? वह जानता है कि वासुदेव कृष्ण ही सर्वस्व हैं।
कुछ भी हम देखते हैं, वह मात्र वासुदेव की शक्ति का
रूप है। व्यक्ति को पहले इस बात का निश्चय होना चा
तब वह भक्त हो जाता है। इसलिए कृष्ण परामर्श देते हैं
आप भले ही समझें या न समझें, मात्र उनके प्रति अपने-आ
समर्पित कर दो। कृष्ण ने *भगवद्गीता* में जो कुछ सिखाया
हम भी अपनी तरफ से बिना कोई मनगढ़न्त बात जोड़े हुए
सिखा रहे हैं। यही हमारा कृष्णभावनामृत-आन्दोलन है। इसके
सबके लिए खुले हैं और इसकी विधि बहुत ही सरल है। ह
अपने केन्द्र हैं। यदि आप इस आन्दोलन का लाभ उठाना च
हैं तो आपका स्वागत है। आप सुखी हो जाएँगे।

३

प्रकृति के नियमों से परे

भौतिक जीवन में हम अपने मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रख सकते। मन आज्ञा देता है, "अपनी इन्द्रियों द्वारा इस प्रकार से सुख भोग करो" और हम अपनी इन्द्रियों से सुख भोग कर रहे हैं। भौतिक जीवन का अर्थ है इन्द्रिय-तृप्ति। यह इन्द्रिय-तृप्ति की प्रक्रिया जन्म-जन्मान्तर में चलती रहती है। विभिन्न प्रकार की अनेक जीव-योनियों में इन्द्रिय-तृप्ति के विभिन्न प्रकार के स्तर हैं। भगवान् कृष्ण इतने दयालु हैं कि उन्होंने हमें अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है।

हम कृष्ण के अभिन्न अंश हैं। हममें कृष्ण की सभी कामनाओं के सूक्ष्म अंश विद्यमान हैं। हमारा अस्तित्व भगवान् के ही एक लघु कण के समान है; ठीक वैसे ही जैसे स्वर्ण के एक लघु-कण में मूल स्वर्ण के सभी गुण हैं। कृष्ण में इन्द्रिय-तृप्ति की प्रवृत्ति है; वे आदि भोक्ता हैं। *श्रीमद्भगवद्गीता* में यह कहा गया है कि कृष्ण परम भोक्ता हैं। हमारे अन्दर सुख भोगने की प्रवृत्ति का कारण भी यही है कि यह मूल रूप से भगवान् कृष्ण में विद्यमान है।

वेदान्त–सूत्र कहता है कि सभी वस्तुओं का उद्‌भव कृष्ण से होता है। परम ब्रह्म या परम सत्य का अर्थ है—वह, जिससे कि सब वस्तुओं की उत्पत्ति होती है। इसलिए हमारी इन्द्रिय-तृप्ति की इच्छा भी भगवान् कृष्ण से आती है। इन्द्रियों की पूर्ण तृप्ति

है—कृष्ण और राधारानी। युवक और युवतियाँ भी उसी प्रक अपनी इन्द्रियों से आनन्द प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं, पर उनकी यह प्रवृत्ति कहाँ से आ रही है? यह भगवान् कृष्ण आ रही है। क्योंकि हम कृष्ण के अभिन्न अंश हैं, हमारे अ इन्द्रिय-तृप्ति की इच्छा का गुण विद्यमान है। परन्तु अन्तर है कि हम अपनी इन्द्रिय-तृप्ति इस भौतिक जगत् में करना चा है; इसलिए हम पथभ्रष्ट हैं। कृष्णभावनामृत में भक्त अपनी इन्द्रि की तृप्ति भगवान् कृष्ण के साहचर्य में करता है। तब यह है।

उदाहरण के लिए यदि कोई स्वादिष्ट रसगुल्ला या अच्छा व्यं हो तो अंगुलियाँ उसे उठा लेती हैं पर ये उसका आनन्द ले सकतीं। पहले यह भोजन पेट में पहुँचाना होगा तब अंगु भी आनन्द ले सकती है। उसी प्रकार, हम सीधे इन्द्रिय-तृप्ति कर सकते। परन्तु जब हम कृष्ण का साहचर्य करते हैं और कृष्ण आनन्दित होते हैं, तब हम भी आनन्द का अनुभव सकते हैं। यह है हमारी स्थिति। अंगुलियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक वस्तु नहीं खा सकतीं। ये अंगुलियाँ रसगुल्ला का आनन्द नहीं सकतीं। अंगुलियाँ मिठाई को उठाकर पेट में डाल सकती हैं, जब पेट को आनन्द मिलता है तो अंगुलियाँ भी आनन्दित हैं।

हमें भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति की प्रवृत्ति को शुद्ध करना होगा। कृष्णभावनामृत है। कृष्णभावनामृत के लिए हमें शुद्ध होना पड़े वह शुद्धि क्या है? हम आनन्द का उपभोग सीधे नहीं कर स इसलिए हमें कृष्ण के माध्यम से आनन्द का उपभोग करना उदाहरण के लिए, हम प्रसाद ग्रहण करते हैं। बहुत ही

प्रसाद; यहाँ जो प्रसाद बनाया जाता है, वह सीधे नहीं ग्रहण किया जाता, हम इसे कृष्ण के माध्यम से ग्रहण करते हैं। सर्वप्रथम, हम प्रसाद कृष्ण को अर्पित करते हैं, और तब हम इसे ग्रहण करते हैं।

कठिनाई क्या है? कोई कठिनाई नहीं, किन्तु आप शुद्ध हो जाते हैं। भोजन करने की प्रक्रिया वही है। यदि आप सीधे ग्रहण करते हैं तो सांसारिक भार से ग्रस्त हो जाते हैं। यदि आप कृष्ण को अर्पित करते हैं और उसके बाद ग्रहण करते हैं, तो आप इस भौतिक जीवन के सभी दोषों से मुक्त हो जाते हैं। *भगवद्गीता* में यही कहा गया है। भक्त कृष्ण को अर्पित करने के बाद प्रसाद ग्रहण करते है; इसे यज्ञ कहा गया है। यहाँ, कृष्ण या विष्णु को हम जो अर्पित करते हैं वह यज्ञ कहलाता है। इस भौतिक जगत् में हम जो कुछ भी करते हैं वह किसी-न-किसी प्रकार का पाप कर्म होता है, भले ही हम इसे न जानते हों। हत्या करना पाप कर्म है, भले ही हम जान-बूझ कर हत्या न करते हों। जब आप सड़क पर चलते हैं तो आप बहुत सारे पशु जीवों की हत्या करते हैं। जब आप जल पीते हैं, उस समय भी आप हत्या करते हैं। पानी के बर्तन के नीचे बहुत सारी चींटियाँ तथा जीवाणु मारे जाते हैं। जब आप आग जलाते हैं उस समय भी अनेक जीवाणु आग में जल जाते हैं। जब आप ओखली में मसाले पीसते हैं, अनेक छोटे जीवाणु, आग में मारे जाते हैं।

हम लोग इसके लिए उत्तरदायी हैं। इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक हम अनेक पाप-कर्मों में उलझते जा रहे हैं। इसलिए *भगवद्गीता* में कहा गया है कि यदि आप भगवान् को अर्पित भोजन का अवशेष ग्रहण करते हैं तो आप सभी दोषों से मुक्त हो जाते

हैं। अन्यथा कृष्ण को अर्पित किये बिना जो स्वयं खाने के लि
भोजन बनाता है, वह पाप कर्मों के फल मात्र खाता है। य
हमारी स्थिति है। इसलिए, यह कहा गया है कि क्योंकि प्र
लोग अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रख सकते अत: वे भौति
जोवन में संलग्न रहते हैं और बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्र
फँस कर विभिन्न योनियों में विचरण करते रहते हैं।

मैं नही जानता कि मेरा अगला जन्म क्या है, किन्तु अग
जन्म अवश्य होगा। हमारे सामने अनेक योनियाँ है; उनमें से कि
भी योनि में जन्म ले सकता हूँ। मैं एक देवता भी हो सक
हूँ, मैं एक बिल्ली हो सकता हूँ, मैं एक कुत्ता हो सकता
मैं ब्रह्मा हो सकता हूँ—जीवन के अनेक रूप हैं। अगले ज
में मुझे इनमें से एक रूप स्वीकार करना होगा भले ही मैं
न चाहूँ। मानों कोई मुझसे पूछे, "अगले जन्म में क्या आप कु
या सूअर का स्वरूप स्वीकार करना पसन्द करेंगे?" मैं इसे प
नहीं करूँगा। परन्तु प्रकृति का नियम कहता है कि यह श
छोड़ने के बाद, जब मैं इस शरीर में नही रहूँगा, मुझे अ
कर्मानुसार दूसरा शरीर ग्रहण करना ही पड़ेगा। यह प्रकृति के ह
में है। इसकी व्यवस्था श्रेष्ठ अध्यक्षता में होती है। आप अ
नहीं दे सकते, "हमें ब्रह्मा का शरीर दें, हमें इन्द्र का श
दें, हमें राजा का या कोई उच्च शरीर दें।" यह आपके
हमारे हाथ में नहीं है। इसका निर्णय कृष्ण की श्रेष्ठ शक्ति
किया जाता है और आपको शरीर प्रदान किया जाएगा। इस
हमारा कर्त्तव्य है कि हम ऐसा शरीर तैयार करें जो हमें भग
कृष्ण की ओर ले जाने में सहायक हो। यही कृष्णभावनामृत है

महान् अधिकारी, प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि व्यक्ति को

से आदेश ग्रहण करना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक गुरु से उपदेश लेना आवश्यक है। व्यक्ति को किसी से भी उपदेश तब तक नहीं लेना चाहिए जब तक कि वह उसे गुरु के रूप में स्वीकार न कर ले। परन्तु वह भी, जिसका कोई उत्तम गुरु है, कृष्णभावनाभावित नहीं बना रह सकता, यदि वह इस भौतिक संसार में रहने के लिए दृढ़ निश्चय किए हुए है। यदि मेरा दृढ़ निश्चय भौतिक आनन्द लेने के लिए भौतिक जगत् में रहने का है, तो मेरे लिए कृष्णभावनाभावित होना असम्भव है।

भौतिक जगत् में प्रत्येक मनुष्य अपने भौतिक जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए हर प्रकार की राजनैतिक, लोकोपकारी और मानवीय गतिविधियों में संलग्न है, किन्तु उसके लिए यह सम्भव नहीं है। यह बात मनुष्य को समझ लेनी चाहिए कि भौतिक जगत् में मनुष्य कितनी भी जोड़-तोड़ करे, वह सुखी नहीं रह सकता। इस सम्बन्ध में एक दृष्टांत देता हूँ, जिसे मैं कई बार दोहरा चुका हूँ। यदि आप पानी से मछली को बाहर निकाल दें और कोमल मखमली गद्दे पर आराम से लिटा दें तो भी मछली सुखी नहीं रह सकती। वह मर जाएगी। चूँकि मछली पानी का जीव है, इसलिए वह पानी के बिना वह सुखी नहीं रह सकती। इसी प्रकार हम भी जीवात्मा हैं और जब तक हम आध्यात्मिक जीवन या आध्यात्मिक जगत् में नहीं रहते, हम सुखी नहीं हो सकते। यही हमारी स्थिति है।

प्रत्येक मनुष्य ऐसी आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है, किन्तु हम अज्ञानी हैं और यही कारण है कि हम भौतिक परिस्थितियों में सुखी रहने का प्रयत्न करते हैं। हम निराश हो जाते हैं और द्विविधा में पड़ जाते हैं। इसलिए हमें अपने

इस अज्ञान को मिटाना होगा कि हम इस भौतिक जगत् में जोड़-तोड़ करके अत्यन्त सुखी रह सकते हैं। तभी कृष्णभावनामृ प्रभावकारी हो सकता है।

हमारे शिष्य और शिष्याएँ जीवन के भौतिक रूप को घृ की दृष्टि से देखते हैं। उनके पिता तथा अभिभावक निर्धन न हैं। इनके पास खाद्य सामग्री या भौतिक सुखों की कोई क नहीं है, फिर वे निराश क्यों है? आप कह सकते हैं, क्यों भारत एक गरीब देश है, इसलिए यहाँ के निवासी निराश किन्तु अमरीकी लड़के और लड़कियाँ क्यों निराश हैं? यह बात का प्रमाण है कि जीवन की भौतिक दृष्टि आपको सु नहीं बना सकती। आप अपने जीवन को सुखी बनाने के लि कितना भी प्रयत्न क्यों न करें, किन्तु भौतिक जीवन से आप सुख प्राप्त नहीं हो सकता। यह एक सत्य । जो मनुष्य भौति जीवन के जोड़-तोड़ करके सुखी होने का प्रयत्न करते कृष्णभावनाभावित नहीं हो सकते। भौतिक जीवन से उत्पन्न निरा और भ्रम के कारण ही कृष्णभावनाभावित होने की आवश्यक है। ये लड़के-लड़कियाँ कृष्णभावनाभावित होने के लिए अच्छ तरह से उपयुक्त हैं। *श्रीमद्भागवत* में एक श्लोक आता है कभी-कभी अपने भक्तों पर विशेष कृपा-दृष्टि करने के लिए भगव कृष्ण उन्हें सभी भौतिक समृद्धियों से वंचित कर देते हैं। पाण्डवों को उनके राज्य से वंचित कर दिया गया था, यद्य कृष्ण वहाँ स्वयं विद्यमान थे। कृष्ण उनके मित्र के रूप में उपस्थि थे, फिर भी पाण्डवों को उनके राज्य से वंचित किया गया उनकी सम्पत्ति छिन गयी थी, उनकी पत्नी को अपमानित कि गया था और उन्हें वनवास भेज दिया गया था।

युधिष्ठिर महाराज ने कृष्ण से यह प्रश्न परोक्ष रूप से पूछा था, "आप हमारे मित्र हैं, फिर भी हमें इतनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है?" कृष्ण युधिष्ठिर महाराज को उत्तर देते हैं, "यह मेरी विशेष कृपा है।" कभी-कभी हम कृष्ण की विशेष कृपा को समझ नहीं पाते।

जीवन की भौतिक दृष्टि के प्रति अमरीकी और अँग्रेज लड़कों की यह वितृष्णा कृष्णभावना को स्वीकार करने के लिए अच्छी भूमिका है। निस्सन्देह, कृष्णभावनाभावित होने के लिए किसी को गरीब होने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु यदि कोई चाहे कि वह भौतिक जीवन के सुखों का भोग करते हुए आध्यात्मिक दृष्टि से भी उन्नति करता रहे तो यह सम्भव नहीं है। ये दोनों परस्पर विरोधी आकांक्षाएँ हैं। उसे आध्यात्मिक जीवन में ही सुखी होने के लिए कृतसंकल्प होना होगा। यही वास्तविक सुख है।

यह मनुष्य जीवन विशेषतया तपस्या के द्वारा आध्यात्मिक जीवन की ऊँचाइयों को प्राप्त करने के लिए हमें मिला है जिसका अर्थ है, जीवन के भौतिक रूप को स्वेच्छा से त्याग देना। भारत के इतिहास में भरत महाराज जैसे अनेक राजा हुए हैं, जो छोटी आयु में ही तपस्या शुरू कर दी थी। भरत महाराज केवल २४ वर्ष की अवस्था में ही अपनी युवा पत्नी, छोटे बच्चों और भारतवर्ष के सम्पूर्ण साम्राज्य को ठुकराकर ध्यान के लिए जंगल में चले गये थे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। प्रह्लाद महाराज से उनके पिता हिरण्यकशिपु ने पूछा था, "तुम्हें कृष्णभावनामृत का यह उपदेश किसने दिया है?" राजकुमार किसी से मिलता-जुलता नहीं, केवल अपने नियुक्त अध्यापकों से ही शिक्षा ग्रहण करता है, फिर यह कैसे हुआ कि ५ वर्ष का एक बालक इतना कृष्णभावनाभावित

हो उठा? उनके पिता विस्मित हो उठे और उन्होंने बालक
पूछा "तुमने कृष्णभावना की सीख कहाँ से प्राप्त की?" बाल
ने उत्तर दिया, "मेरे प्रिय पिताजी, कृष्णभावनामृत आप जैसे भौति
विषय-वासना में डूबे व्यक्तियों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकती
हिरण्य का अर्थ है स्वर्ण और कशिपु का अर्थ है गद्देदार कोम
बिस्तर।

भौतिक जीवन चबाए हुए पदार्थों को फिर से चबाने में
व्यतीत हो जाता है। उदाहरण के लिए एक पिता को देखें।
पिता जानता है कि उस पर उत्तरदायित्व हैं, इसलिए अपने परि
के भरण-पोषण के लिए वह कड़ी मेहनत करता है। इस
में जीवन का ऊँचा स्तर बनाये रखना बहुत कठिन है, इस
मनुष्य को बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ती है और फिर वह अ
पुत्र को भी इसी तरह लगा देता है। भौतिक जीवन के अ
कटु अनुभवों के होते हुए भी मनुष्य अपने पुत्र को उसी
पर ले जाता है। यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है, इस
यह चबाए हुए को फिर से चबाने के समान है। एक बार
का रस चूस लेने के बाद हम उसे बाहर सड़क पर फेंक
हैं और यदि कोई मनुष्य उसका स्वाद जानने के लिए फि
उसे चूसता है तो वह चबाए हुए को ही फिर से चबाने
है। इसी प्रकार जीवन के संघर्षपूर्ण इस भौतिक जगत् के
अनुभव बहुत मधुर नहीं हैं, किन्तु *श्रीमद्भागवत* में कहा
है कि मनुष्य रजोगुण से ही उत्पन्न हुआ है। भौतिक जग
तीन प्रकार के गुण हैं, सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। व
मनुष्य रजोगुण में स्थित होते है, इसलिए कठोर परिश्रम
चाहते हैं। इसी प्रकार के परिश्रम को सुख माना जाता है।

में आप प्रत्येक मनुष्य को कठोर श्रम में लगे हुए देखते है। सुबह के समय, सभी बसें और ट्रकें तेज गति से दौड़ती हैं और लोग सुबह से देर रात तक कार्यालय या कारखानों में जाते रहते हैं। वे कठोर श्रम करते हैं और इसे सभ्यता की उन्नति कहा जाता हैं। उनमें से कुछ निराश हैं और इसे बिलकुल पसन्द नहीं करते। निराश तो होंगे ही, आखिर वे कठोर परिश्रम करते हैं। सूअर भी दिन-रात कठोर श्रम करता है और ढूँढ़ता रहता है, "मल कहाँ है? मल कहाँ है?" उसका यही काम है। इसलिए एक प्रकार से यह सभ्यता सूअर और कुत्ते की सभ्यता है। यह मानव-सभ्यता नहीं है। मानव-सभ्यता का अर्थ है, गम्भीरता। प्रत्येक मनुष्य को जिज्ञासु होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को यह जानने के लिए उत्सुक रहना चाहिए कि मैं कौन हूँ? क्यों मुझे अनाज के कुछ दानों के लिए इतनी कठोर मेहनत करने के लिए बाध्य किया जा रहा है? मैं क्यों इस कष्टदायक स्थिति में पड़ा हूँ? मैं कहाँ से आया हूँ? मुझे कहाँ जाना है? *वेदान्त-सूत्र* के आरम्भ में लिखा है कि मनुष्य को यह जानने के लिए उत्सुक रहना चाहिए कि वह कौन है, कहाँ से आया है और उसे कहाँ जाना है। कृष्णभावनामृत उन लोगों के लिए है जो इस भौतिक जगत् से घृणा करने लगते हैं, वे कृष्णभावनामृत के विकास के लिए सबसे अधिक उपयुक्त प्रत्याशी हैं। वे यह जानना चाहेंगे कि क्यों ये लोग इतनी कड़ी मेहनत करते हैं और उनके जीवन का लक्ष्य क्या है?

श्रीमद्भागवत में इसका उत्तर दिया गया है। लोग इसलिए इतनी मेहनत करते हैं क्योंकि वे वास्तव में यह नहीं जानते कि उनके जीवन का लक्ष्य क्या है। प्रत्येक व्यक्ति का कहना है कि वह

अपने स्वार्थ में लगा है, किन्तु वह नहीं जानता कि उसका स्
क्या है। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णु*, उसे यह जानना चा
कि उसका वास्तविक स्वार्थ भगवान् विष्णु को प्राप्त करना
वे यह नहीं जानते। वे यह क्यों नहीं जानते? क्योंकि वे
आशा लगाये बैठे हैं, जिनकी पूर्ति सम्भव नहीं है। मुझे उ
ही आशा रखनी चाहिए, जिसकी पूर्ति सम्भव हो; यही उ
भी है, किन्तु यदि हम ऐसी आशा लगाये बैठेंगे, जिसकी
कभी सम्भव नहीं है तो ऐसी आशा कभी पूरी नहीं होगी।

हम भगवान् की अन्तरंगा और बहिरंगा शक्तियों के मिश्रण
स्थूल बहिरंगा शक्ति यह स्थूल भौतिक शरीर है तथा सूक्ष्म ब
शक्ति मन, बुद्धि और अहंकार है। दोनों शक्तियों—स्थूल ब
शक्ति और सूक्ष्म बहिरंगा शक्ति—के पीछे आत्मा है, अंतरंगा श
यह शरीर भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना
यह स्थूल बहिरंगा शक्ति कहलाती है। मन, बुद्धि और अ
सूक्ष्म बहिरंगा शक्ति है। और उस के पीछे आत्मा है।

मैं इस शरीर का स्वामी हूँ। जैसे एक व्यक्ति कमीज
कोट से ढँका है जो उसके वास्तवकि शरीर के बाहर हैं,
प्रकार हम भी भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश से
स्थूल शरीर से ढँके हैं। ये भगवान् या कृष्ण की स्थूल ब
शक्तियाँ हैं और मन, अहंकार और बुद्धि सूक्ष्म शक्तिया है
प्रकार हम आवरण से ढके हैं।

यदि मैं सोचूं कि अच्छी कमीज और कोट पहनने मा
मैं सुखी हो सकता हूँ तो क्या यह सम्भव होगा? जब
आप अच्छी तरह से खा नहीं लेते, अच्छी तरह से सो
लेते, अपनी इन्द्रिय-तृप्ति नहीं कर लेते, तब क्या मात्र

कमीज और कोट पहनने से ही सुखी हो सकते हैं? नहीं, यह सम्भव नहीं है। हम इस बहिरंगा शक्ति के जोड़-तोड़ से सुखी होना चाहते हैं। यह नहीं हो सकता। आप जीवात्मा हैं—आपको आध्यात्मिक आहार प्राप्त करना आवश्यक है। आपका जीवन आध्यात्मिक होना चाहिए, तभी आप सुखी हो सकते हैं। जैसे आप अच्छी कमीज और कोट पहनने मात्र से सुखी नहीं हो सकते, इसी प्रकार भौतिक जीवन-दृष्टि भी आपको सुखी जीवन प्रदान नहीं कर सकती। पदार्थ दो प्रकार के होते हैं: स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल पदार्थ हैं: ऊँचे गगनचुम्बी भवन, मशीनें, कारखाने, अच्छी सड़कें, अच्छी कारें आदि और सूक्ष्म पदार्थ हैं: गीत, काव्य, दर्शन आदि। लोग इन स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों की सहायता से सुखी होने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा हो नहीं सकता।

लोगों ने इस प्रकार की सभ्यता क्यों स्वीकार की है? क्योंकि उनका नेतृत्व अन्धे लोगों द्वारा किया जाता है। हम यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन चला रहे हैं, किन्तु इसमें बहुत थोड़े लोगों की रुचि हैं। किन्तु यदि हम इस झूठ का प्रचार करें, "यदि आप हमारा अनुसरण करेंगे तो छह महीने में स्वयं भगवान् बन जायेंगे और आप सर्वशक्तिमान हो जाएँगे" तो अनेक लोग हमारा अनुसरण करेंगे। वास्तव में यह ऐसा है जैसे एक अन्धा व्यक्ति दूसरे अन्धों का नेतृत्व कर रहा हो। मान लीजिए कोई अन्धा व्यक्ति कहे "ठीक है, आइए, मेरा अनुसरण कीजिए, मै यह भीड़-भाड़ भरी मल्बरी स्ट्रीट पार कराने में आपकी सहायता करूँगा।" वह स्वयं अन्धा है और उसके अनुयायी भी अन्धे हैं। परिणाम यह होगा कि वे किसी कार या ट्रक से टकरा कर मृत्यु की गोद में सो जाएँगे।

हम नहीं जानते हैं कि हम भौतिक प्रकृति के कड़े नि
से किस प्रकार बँधे हैं। हम इस भौतिक बन्धन से कैसे
हो सकते हैं? हमें सीख उनसे लेनी होगी जो अन्धे नहीं
जिनकी आँखें खुल चुकी हैं और जो भौतिक बन्धनों से
हैं। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे व्यक्तियों से ही सीख लेनी चा
तभी वह अपने स्वार्थ को समझ पाएगा। अन्यथा यदि एक अ
अन्धे व्यक्ति से ही सीख लेता है तो वह भौतिक बन्धनों
मुक्त नहीं हो सकता।

स्वार्थ क्या है? बच्चा जब रोता है तो उसका स्वार्थ
होता है? वह अपनी माँ के स्तन को ढूँढ़ रहा होता है।
व्यक्ति यह जानता है वह उसे तुरन्त उसकी माँ के पास ले
है—"अपने बच्चे का ध्यान रखो, वह रो रहा है।" माँ
छाती से लगा लेती है और बच्चा तुरन्त सुखी हो जाता
बच्चा नहीं बता सकता कि वह क्या चाहता है, इसलिए
केवल रोता है; किन्तु जो व्यक्ति जानता है कि वह क्यो
रहा है, वह उसकी सहायता करता है और बच्चा सुखी हो
है। इसी प्रकार चूँकि हम भगवान कृष्ण के अभिन्न अंश हैं,
वास्तव में कृष्ण से मिलने के लिए ही बेचैन हैं, किन्तु ये
नेता, अन्धे नेता, जो यह नहीं जानते, हमें रोटी के बदले
के लिए पत्थर दे रहे हैं।

हम कैसे सुखी रह सकते हैं? मैं स्थूल और सूक्ष्म ब
शक्तियों के बारे में पहले ही बता चुका हूँ। इन स्थूल और
बहिरंगा शक्तियों में आसक्त लोगों की इच्छाएँ कभी पूरी न
सकतीं। जिनकी आसक्ति विष्णु में है और जो विष्णु-मार्ग के प्र
हैं, वे सच्चे मित्र हैं। जो कृष्णभावनामृत का दान कर र

वही विश्व के सच्चे मित्र हैं। कोई और मनुष्य मानव-समाज को सुखी नहीं बना सकता। यह व्याख्या प्रह्लाद महाराज की है।

आप इस भौतिकशक्ति से जूझते हुए सुख की प्रक्रिया का निर्माण नहीं कर सकते। यह सम्भव नहीं है, क्योंकि भौतिक शक्ति पर आपका नियन्त्रण नहीं है। इसका नियन्त्रण भगवान् के हाथ में है। आप भौतिक शक्ति पर कैसे विजय प्राप्त कर सकते हैं? यह सम्भव नहीं है। यह *भगवद्गीता* में कहा गया है। प्रकृति के कठोर नियमों का अतिक्रमण करना सम्भव नहीं है। कृष्ण कहते हैं, "यह मेरी शक्ति है, मैं इसका नियन्त्रक हूँ, किन्तु मनुष्य अपने आपको मेरे प्रति समर्पित कर सकता है।"

ब्रह्माण्ड की सारी भौतिक गतिविधियाँ विद्रोही आत्माओं को परमात्मा के परमधाम में वापस लाने में लगी हैं। यही स्थिति है। माया के कठोर नियम भी विद्यमान हैं। क्यों? पुलिस या सैनिक शक्ति का उद्देश्य क्या है? इनका उद्देश्य है, नागरिकों को राज्य के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करना। यदि कोई नागरिक राज्य के नियम की अवज्ञा करता है तो उसे तुरन्त पुलिस की देखरेख में ले लिया जाता है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य, भगवत् सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करता है तो उसे प्रकृति के कठोर नियमों के अन्तर्गत रखा जाता है, और वह अवश्य दुख पायेगा। यही स्थिति है। इसलिए हमारी स्वार्थसिद्धि इसी में है कि हम भगवान् की खोज में लगें और अपने-आपको उनके प्रति समर्पित कर दें। इसी से हम सुखी होंगे, अन्यथा यदि हम भौतिक वस्तुओं को स्वीकार करते हुए सुखी रहने का प्रयत्न करेंगे तो यह संभव नहीं हो पाएगा।

प्रह्लाद महाराज बताते हैं कि भगवान् विष्णु के पथ या कृष्णभावनामृत

की खोज कैसे की जा सकती है। वे कहते हैं कि हमने अने अनावश्यक चीजें गढ़ ली हैं और हम उनके जाल में फँस रह गये हैं। *श्रीमद्भागवत* के आरम्भ में कहा गया है कि इन अनावश्यक कठिनाइयों से बाहर आने और स्वनिर्मित समस्या के घेरे से निकलने की कोशिश करनी चाहिए। आज सुबह बर्लिन नगर की एक तस्वीर देखी, जिसे मेरे एक शिष्य ने भिजवा था। मैं बर्लिन और मास्को दोनों शहरों में रहा हूँ। दोनों बहुत सुन्दर नगर है, बर्लिन सुन्दर नगर हैं, और लंदन भी सु नगर है। फिर लोग क्यों झगड़े में पड़े हैं और हर दूसरे न पर बमवर्षा करने पर तुले हैं। ऐसा क्यों हुआ है? क्योंकि उन रुचि भगवान् विष्णु में नही रही। इसीलिए वे सोचते हैं, "अ मेरे शत्रु हैं, मैं आपका शत्रु हूँ" और फिर हम कुत्ते-बिल्लि की तरह लड़ते हैं, किन्तु यदि हम विष्णु या भगवान कृष्ण जान लें तो ये उन्नत राज्य, उन्नत सभ्यताएँ अच्छी तरह ब रह सकती हैं। आप सुखी हो जाएँगे, अच्छा खाएँगे, अच्छी त नाचेंगे, अच्छी तरह जियेंगे और भगवान् के परमधाम में वा चले जाएँगे। इहलोक में आनंद प्राप्त करें और परलोक में यही हमारी प्रार्थना है।

प्रत्येक व्यक्ति को कृष्णभावनामृत-आन्दोलन गम्भीरता से अपन चाहिए और इसे अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करना चाहि यह वैदिक सिद्धान्त पर प्रमाणित है। यह कोई मनगढ़ंत या अप्रामा नहीं है। हम विश्व के अनेक भागों में केन्द्र खोल रहे हैं, त लोग अपने वास्तवकि हित को अर्थात् विष्णु और कृष्ण को पह सकें। यही हमारा उद्देश्य है। कृपया हमारी सहायता करें और ह साथ सम्मिलित हों।

४

योग का लक्ष्य

भगवद्गीता में संस्कृत शब्द *माम्* का अनेक बार प्रयोग हुआ है। इस शब्द का अर्थ है "मेरे को" भगवान् कृष्ण कहते हैं, "मेरे को" अर्थात् कृष्ण को। हम इसकी व्याख्या किसी और रूप में नहीं कर सकते। जब मैं कहता हूँ, "मुझे पानी का एक गिलास ला दो," तो इसका अर्थ है कि मैं वह व्यक्ति हूँ, जिसे पानी के गिलास की आवश्यकता है और इसलिए यदि आप पानी का यह गिलास मुझे देंगे, किसी अन्य को नहीं तो यह ठीक ही होगा। जब कृष्ण कहते हैं "मेरे को" तो इसका अर्थ होता है, कृष्ण को। किन्तु अनेक दार्शनिक आज भी इसकी व्याख्या करते हैं, "किसी अन्य को।" व्याकरण की दृष्टि से भी यह अर्थ गलत है।

जो मनुष्य कृष्ण के प्रति अनुरक्त है, वह कृष्णभावनाभावित है। उनका कहना है कि यदि आप अपनी प्रेमिका के प्रति अनुरक्त हैं तो आप सदैव उसका चिन्तन करते रहते हैं। यह प्रेमभावना है। यह स्वाभाविक है। कहा जाता है कि एक स्त्री, जो अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य प्रेमी से भी प्रेम करती है, वह अपनी गृहस्थी के कर्तव्यों के प्रति बहुत सचेत रहती है, किन्तु सदा इसी ध्यान में डूबी रहती है, "कब मैं अपने प्रेमी से रात को मिलूँगी?" यह एक उदाहरण है। यदि हम किसी से प्रेम करते हैं तो झूठा सम्बन्ध होने पर भी यह सम्भव है कि हम

हमेशा उसी का ध्यान करते रहें। यदि भौतिक रूप में यह सम्भ
है तो आध्यात्मिक रूप में यह सम्भव क्यों नहीं हो सकता
भगवद्गीता की सम्पूर्ण शिक्षा का यही सार है।

गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "एक योद्धा के रूप
तुम्हें लड़ना होगा। तुम युद्ध से विरत नहीं हो सकते। यह तुम्ह
कर्तव्य है।" आजकल मेरा यह व्यावहारिक अनुभव रहा है
आपके देश का "ड्राफ्ट बोर्ड" युवकों को सेना में प्रवेश के लि
आमंत्रित कर रहा है। किन्तु युवक इसके राजी नहीं हैं। वे रा
इसलिए नहीं हैं, क्योंकि उनका प्रशिक्षण क्षत्रिय योद्धाओं के
में नहीं हुआ है। उनका प्रशिक्षण शूद्रों अर्थात् श्रमिकों के
में हुआ है। इसलिए वर्ण-व्यवस्था बहुत वैज्ञानिक है। कुछ लो
का प्रशिक्षण ब्राह्मणों अर्थात ज्ञानियों के रूप में होना चाहि
जो समाज में बुद्धिमान् व्यक्ति हैं, उन्हें छाँटकर उच्च दर्शन वि
की शिक्षा दी जानी चाहिए और जो लोग ब्राह्मणों से कम बुद्धि
हैं, उन्हें सैनिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। हमें इस समाज
केवल सैनिक ही नहीं, सभी वर्ण के व्यक्तियों की आवश्य
है। प्रत्येक व्यक्ति सैनिक कैसे बन सकता है? चूँकि ये
शूद्रों को अर्थात् सामान्य श्रमिकों को वियतनाम भेज रहे हैं, इस
वे अकारण ही मारे जा रहे हैं। जो देश अपनी वैज्ञानिक उ
के लिए अभिमान करता है और इतना भी नहीं जानता कि
समाज को कैसे संगठित किया जाना चाहिए, वह देश मूर्खों
समाज है।

भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं कि समाज में चार वर्ण
हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह स्वाभाविक ही है।
लोगों का झुकाव आध्यात्मिक उन्नति की ओर होता है और

लोग ब्राह्मण कहलाते हैं। अब हम ऐसे युवकों को प्रशिक्षित कर रहे हैं जिनमें आध्यात्मिक रुचि है। किन्तु उन्हें अनावश्यक रूप से सैनिक सेवा में भर्ती होने के लिए बाध्य किया जा रहा है। मूर्खों को यह ज्ञान नहीं है कि किसी युवक को उच्च कोटि के विज्ञान की शिक्षा दी जा रही है। जब उसको पूर्ण बनाया जा रहा है तो उसे क्यों नष्ट किया जाए? ऐसे बुद्धिमान व्यक्तियों को, जिनमें ब्राह्मणोचित योग्यता है, ब्रह्मचारी विद्यार्थी आश्रम में भेजकर संयम सिखाया जा रहा है। ये युवक न तो मांस भक्षण करते हैं और न ही अनैतिक यौनाचार करते हैं। इन्हें पूर्ण ब्राह्मण अर्थात् उच्चकोटि के बुद्धिजीवियों और समाज के शुद्धतम व्यक्तियों के रूप में शिक्षा दी जाती है। यदि एक परिवार में एक ब्राह्मण हो तो सारा परिवार, यहाँ तक कि सारा समाज पवित्र हो जाता है। किन्तु आज उन्हें यह ज्ञान नहीं है कि ब्राह्मण को कैसे शिक्षा दी जाय, क्षत्रिय को कैसे प्रशिक्षित किया जाय। जीवन के अन्य क्षेत्रों में शूद्रों और वैश्यों के लिए अच्छे प्रशिक्षण किया जाय। जीवन के अन्य क्षेत्रों में शूद्रों और वैश्यों के लिए अच्छे प्रशिक्षण की व्यवस्था है। यदि कोई व्यावसायिक प्रशिक्षण पाना चाहता है तो उसके लिए कॉलेज या तकनीकी विद्यालय हैं, यह अच्छी बात है। किन्तु हर व्यक्ति को तकनीकी में ही क्यों घसीटा जाए? जैसे हमारे शरीर में सुचारु व्यवस्था के लिए एक सिर है, बाहें हैं, पेट और टाँगें हैं। शरीर के ये सभी अवयव आवश्यक हैं। आप यह नहीं कह सकते, "हमें सिर की जरुरत नहीं।" यह मूर्खता है। हमें सभी अवयवों की आवश्यकता है। मान लें एक शरीर है, जिसमें सिर नहीं है तो यह मृत शरीर ही होगा। यदि शरीर तो सुरक्षित है, किन्तु सिर नहीं है तो भी यह मृत शरीर

ही कहलाएगा। सिर शरीर का एक बौद्धिक अवयव माना जात
है। इसी प्रकार यदि समाज में कोई ब्राह्मण नहीं हैं, तो समा
का स्वरूप मृत शरीर के समान होगा। यदि समाज में कोई आध्यात्मि
व्यक्ति नहीं है तो वह मृत समाज कहलाएगा।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, "मैंने समाज को गुण और कर्म
आधार पर चार भागों में विभाजित किया है।" यदि कोई ब्रह्मचा
ब्राह्मण के रूप में कार्य करता है और उसने भगवान् कृष्ण
जानने का गुण अर्जित कर लिया है तो उसे सैनिक कार्रवाई
लिए क्यों बुलाया जाय? शरीर की भुजाएँ क्षत्रिय हैं। समाज अ
देश की रक्षा के लिए निश्चय ही सैनिक व्यवस्था आवश्यक है
इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु इस कार्य के लि
ब्राह्मणों की आवश्यकता नहीं है। यह तो ऐसा हुआ, जैसे मा
ढोनेवाली गाड़ी के आगे घुड़दौड़ का घोड़ा लगा दिया जाय। घुड़दौ
के घोड़े का प्रयोजन अलग है, अन्य भार ढोने वाले अन्य जानव
जैसे गधे, खच्चर और बैल, गाड़ी खींचने के लिए आवश्य
हैं।

मैं यह बात स्पष्ट कहता हूँ—प्रत्येक व्यक्ति इसे समझे—
ऐसा समाज जिसमें कोई आध्यात्मिक व्यक्ति या कृष्णभावनाभावि
व्यक्ति नहीं है, मूढ़ समाज है, क्योंकि उसका सिर नहीं है। य
सिर के बिना कोई व्यक्ति है तो वह मृत शरीर ही है और य
मस्तिष्क नहीं है तो सिर भी नहीं है और यदि मस्तिष्क ठ
ढंग से काम नहीं करता तो वह पागल आदमी है। यदि उस
सिर ही नहीं है तो वह मृत व्यक्ति है।

क्या आप सोचते हैं कि एक मृत समाज में या पागलों
समाज में कभी शान्ति रह सकती है? नहीं, यदि समाज में पा

ही पागल हैं तो शान्ति का प्रश्न ही कहाँ उठता है? इसलिए कृष्णभावनामृत का अध्ययन वर्तमान समाज के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समाज का नेतृत्व करनेवाले राष्ट्रपति और रक्षा सचिव जैसे व्यक्तियों को आत्मविज्ञान की समझ होनी चाहिए।

हाल ही में, जब मैं आपके देश में आ रहा था, मेरी भेंट टोकियो में जापान सरकार के एक सचिव से हुई। मैंने उसे समझाना चाहा कि उसे इस आन्दोलन को सहयोग प्रदान करना चाहिए, तो उसने कहा, "ओह, हम किसी धार्मिक आन्दोलन को सहयोग नहीं दे सकते।" वह सरकार के मुख्य सचिवों में से एक है और इतना मूर्ख है। वह इस आन्दोलन को एक धार्मिक आन्दोलन समझता है। वह इसे भी अन्य अनेक भावुक धर्मों के समान ही समझता है। किन्तु यह आन्दोलन कोरा भावुक आन्दोलन नहीं है। यह समाज की आवश्यकता है। समाज के एक वर्ग के लिए कृष्णभावनाभावित होना आवश्यक है, अन्यथा समाज नष्टप्राय है और नरक में जा रहा है। जब ऐसे मूढ़ लोग सरकारी विभागों के प्रमुख हैं तो शान्ति कैसे हो सकती हैं? आप कुत्तों के समाज में शान्ति की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं, कुत्ते का स्वभाव दूसरे कुत्ते को देखकर भौंकने का है—"भौं! भौं! भौं!" तो आपके कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मानव समाज कुत्तों के समाज के रूप में, बिल्लियों के समाज के में या शेर-चीतों के समाज के रूप में परिणत हो जाय तो शान्ति स्थापित हो सकती है? बाघ बहुत शक्तिशाली जानवर है; वह अनेक अन्य जानवरों को मार सकता है, किन्तु क्या इसका मतलब यह होगा कि वह सबसे महत्त्वपूर्ण जानवर है? नहीं, उसका समाज में कोई उपयोग नहीं है। अब हम बहुत शक्तिशाली हो गये हैं और लड़ने के लिए

हमारे पास अच्छे हथियार भी हैं और हम बहुत से लोगों क
मार सकते हैं, किन्तु ये भद्र व्यक्तियों या भद्र-समाज के लक्षण
नहीं है।

हमारा उद्देश्य बन्दरों, व्याघ्रों, गधों या दुष्टों के ऐसे समाज क
निर्माण करना नहीं है, जो केवल कठोर परिश्रमी हैं। क्या आ
समझते हैं कि गधों का समाज जीवन से कोई लाभ प्राप्त क
सकता है? नहीं।

जिन व्यक्तियों में कृष्ण के प्रति आसक्ति-भाव विकसित
गया है, उनकी आसक्ति और भी बढ़ सकती है। मेरे पश्चि
में आने से पूर्व कृष्णभावनामृत जैसा कोई आन्दोलन नहीं थ
किन्तु अब यह आन्दोलन प्रगति पर है। कृष्ण का जन्म आप
देश में नहीं हुआ था और न ही आप कृष्ण को अपने धार्मि
देवता के रूप में मानते हैं। परन्तु कृष्ण का रूप इतना आकर्ष
हैं कि विदेशी होते हुए भी आप अपरिचित नहीं है। कृष्ण
लिए आप विदेशी नहीं हैं। वे सबके हैं। यदि हम उन्हें विदे
बना लेते हैं तो यह हमारी मूर्खता है।

गीता में कृष्ण कहते हैं, "मेरे प्रिय अर्जुन, इसमें सन्देह न
कि जीवन के अनेक विभिन्न रूप और अनेक योनियाँ हैं। पर
मैं ही उनका पिता हूँ।" देखिए कृष्ण किस प्रकार विश्वव्या
हैं। न केवल मानव-समाज बल्कि पशु-समाज, पक्षी-समाज अ
जन्तु समाज भी उन्हीं का है। कृष्ण कहते हैं, "मैं उनका पि
हूँ।" तो कृष्ण विदेशी कैसे हुए? यह एक मानसिक मन-ग
बात है। कुछ लोग कहते हैं कि कृष्ण भारतीय हैं या कृ
की पूजा हिन्दुओं द्वारा की जाती है, इसलिए वे हिन्दू देवत
में से एक हैं और वे सोचते हैं कि कृष्ण कह रहे हैं, "

मैं हिन्दू देवता हूँ। हाँ, मैं भारतीय हूँ'', परन्तु कृष्ण तो सूर्य के समान हैं। क्या सूर्य भी कभी अमरीकी और भारतीय होता है? कोई भी वस्तु अमरीकी या भारतीय नहीं है; यह सब कृत्रिम है।

''यह ग्रह मानवमात्र के लिए है। बस इतनी ही।'' यही हमारा साम्यवाद है। वर्तमान साम्यवाद दोषपूर्ण है, क्योंकि रूसी कहते हैं कि रूस रूसियों के लिए है या चीन चीनियों के लिए है। अन्य व्यक्तियों के लिए क्यों नहीं? मानव-साम्यवाद के रूप में सोचकर देखें। मानव साम्यवाद ही क्यों? प्राणी साम्यवाद। यदि आप विश्व को मानव-समाज की सम्पत्ति समझते हों तो यह भी दोषपूर्ण है। यह विश्व सभी के लिए है। यह वृक्ष-समाज के लिए भी है, पशु-समाज के लिए भी है। उन्हें भी जीने का अधिकार है। आप पेड़ क्यों काटते हैं? क्यों आप बैलों को वधशाला में भेजते हैं? यह अन्याय है। जब आप स्वयं अन्याय करते हैं तो अपने लिए न्याय की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? हम कृष्णभावनाभावित नहीं हैं। हम नहीं जानते कि कृष्ण ही हमारे आदि पिता हैं और हम सब उनके पुत्र हैं। वृक्ष मेरा भाई है, चींटा मेरा भाई है, बैल मेरा भाई है। अमरीकी मेरा भाई है, भारतीय मेरा भाई है और चीनी भी मेरा भाई है। इसलिए हमें कृष्णभावनामृत का विकास करना होगा। हम विश्वबन्धुत्व और संयुक्त राष्ट्र की मूर्खतापूर्ण बात करते हैं। यह सब मूर्खता है। या तो आप पिता को स्वीकार करें अन्यथा मानवता या भाईचारे की अनुभूति कैसे की जाय, इस विषय में आपको कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए वे वर्षों से केवल बात ही कर रहे हैं, ये मूर्ख के मूर्ख ही हैं। क्या आप संयुक्त राष्ट्र संघ को नहीं देखते?

उसका मुख्यालय न्यूयार्क में है। वहाँ से केवल मूर्खतापूर्ण बा करते हैं। बस यही उनका काम है। इसलिए जब तक कि पू रूप से कृष्णभावनामृत स्थापित नहीं हो जाता है, तब तक विश की स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सकता।

कृष्ण कहते हैं कि आपको उनके प्रति आसक्ति का विका करना होगा। शुरू से इसका आरम्भ करें। आप ऐसा कर सक हैं; क्योंकि यह कृत्रिम नहीं है। यहाँ मेरे कुछ निष्ठावान् विद्या हैं जिनमें यह भावना विकसित हो रही है। वे अभी तक पू तो नहीं हैं। परन्तु वे कृष्ण के प्रति आसक्ति में वृद्धि कर हैं। अन्यथा हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने में वे अपना सम क्यों नष्ट करते? वे ऐसा कर रहे हैं और ऐसा किया जाना सम्भ है। यदि आप प्रयत्न करें तो किसी भी वस्तु के लिए प्रेम विकसि कर सकते हैं। किन्तु कृष्णभावनामृत का विकास बहुत स्वाभावि है, क्योंकि कृष्ण किसी धर्म या संप्रदाय विशेष से सम्बद्ध न है। कृष्ण कहते हैं, "मैं सबका हूँ," इसलिए मूल रूप में सभी लोग कृष्ण से सम्बद्ध हैं। किन्तु हम उन्हें भूल चुके कीर्तन की यह प्रक्रिया आपको कृष्ण का स्मरण जाग्रत करने लिए है। ऐसा नहीं है कि हम कृत्रिम रूप से किसी बात आप में प्रविष्ट कर रहे हैं। नहीं, कृष्ण पहले से ही आपसे सम्ब हैं, किन्तु आप उन्हें भूल गये हैं और हम आपकी मूल चेत को जगाने के लिए आपको एक विधि समझा रहे हैं। इसी आप हमारे मन्दिर में आ सकते हैं। यह तो एक प्रारम्भ हो आप कृष्ण या कृष्ण के भक्तों के दर्शन कर सकते हैं और कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर सकते हैं।

कृष्ण अपने नाम से भिन्न नहीं हैं, क्योंकि वे पूर्ण हैं।

अपने शब्दों से अभिन्न हैं। कृष्ण का नाम और व्यक्तित्व अलग-अलग नहीं है क्योंकि सभी कुछ कृष्ण है।

अद्वैतवाद, सर्वेश्वरवाद या भगवान् के साथ एक होने का दर्शन अपूर्ण है। जब उस एकत्व का कृष्ण को समझने में उपयोग होता है तो वह पूर्ण है। यदि कृष्ण सर्वोच्च सत्य हैं, जिससे सभी वस्तुओं का उद्भव हुआ है तो सर्वस्व कृष्ण ही हैं। जैसे आपके पास सोने की एक खान है और आप सोने के बर्तन और गहने तथा अन्य अनेक वस्तुएँ तैयार कर रहे हैं तो ये सभी वस्तुएँ सोना ही हैं क्योंकि मूल धातु सोना है। आप इसे "कर्णफूल" कह सकते हैं, किन्तु कर्णफूल के आगे "स्वर्ण" शब्द लगाना होगा—सोने के कर्णफूल। आप इसे "गले का हार" भी कह सकते हैं, परन्तु यह सोना है, क्योंकि मूल रूप से यह सोने की खान से आया है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु का उद्भव कृष्ण से हुआ है।

यदि कृष्ण सर्वोच्च परम सत्य हैं तो कोई वस्तु उनसे भिन्न नहीं है। जैसे कर्णफूल, गले का हार, चूड़ी या कलाई की घड़ी के अलग-अलग नाम होते हुए भी वे सब सोने से ही बने हैं। इसलिए वे सोना ही हैं। परन्तु साथ ही साथ आप यह भी नहीं कह सकते कि यह सोना है। आप कहेंगे, "यह सोने से बना गले का हार है; यह सोने का कर्णफूल है।" मायावादी कहेंगे कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म है, परन्तु यह ठीक नहीं है।

इसे *गीता* के तेरहवें अध्याय में भली-भाँति समझाया गया है। "मेरा विस्तार सर्वत्र है, यह मेरा अव्यक्त रूप है।" कृष्ण अपने निराकार रूप में सर्वत्र विद्यमान हैं, परन्तु फिर भी वे व्यक्ति हैं। मायावादी दार्शनिकों का विचार है कि यदि कृष्ण सर्वस्व हैं तो

यहाँ पर कृष्ण के भिन्न होने की सम्भावना कहाँ है? यह नि
दुष्टता है, क्योंकि यह विचार भौतिक दृष्टि से किया गया
यह आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है।

भौतिक दृष्टि से मान लीजिए कि आप कागज का एक टुक
लेते हैं और फाड़ कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फि
उन्हें चारों तरफ बिखेर देते हैं। मूल कागज का कोई अस्ति
नहीं रह जाता। यह पदार्थ है, परन्तु वेदों में लिखा है कि परमत
इतना पूर्ण है कि यदि पूर्ण में से पूर्ण निकाल दिया जाय
भी पूर्ण ही शेष बचता है। एक में से एक घटाने पर शून्य बच
है। भौतिक विचार की दृष्टि से एक में से एक घटाने पर श
बचता है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से ऐसा नहीं है। आध्याति
दृष्टि से एक में से एक घटाने पर एक ही शेष रहता है
एक में एक जोड़ने पर भी एक ही होता है।

कृष्ण सर्वस्व हैं। मायावादी हमारे देवी-देवताओं को यहाँ-
देखकर कहते हैं, "ओह! उन्होंने लकड़ी के कुछ स्वरूप
दिये हैं और वे उन्हें भगवान् मानकर उनकी पूजा कर रहे
परन्तु जो कृष्ण-विज्ञान को जानता है, वह समझता है कि
सब कुछ हैं। इसलिए वे सभी वस्तुओं में प्रकट हो सकते
बिजली के साथ बिजली का प्रवाह भी तार के साथ-साथ च
है। आप जहाँ भी इसका स्पर्श करेंगे, इसे अनुभव कर
इसी प्रकार कृष्ण का प्रवाह भी उनके निराकार रूप में सर्व
और यांत्रिक ही जानता है कि उस शक्ति का प्रयोग कैसे
जाय। फोन स्थापित करने से पहले हम टेलीफोन के बारे में
कर लेते हैं और पैसे के विषय में चर्चा करने के पहले
व्यक्ति को सूचित कर देते हैं कि उसे यह पता करने के

तत्काल आ जाना चाहिए कि फोन कहाँ जोड़ा जा सकता है। और वह आकर अपना काम कर देता है तथा हमें पता भी नहीं लगता, क्योंकि वह तकनीक जानता है। इसलिए मनुष्य को यह मालूम होना चाहिए कि कृष्ण के साथ सम्बन्ध कैसे जोड़ा जाय। कृष्ण सर्वत्र हैं और यही कृष्णभावनामृत है, किन्तु हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि हम लकड़ी, लोहे या धातु के कृष्ण–आकार से कृष्ण को कैसे निकालें।

आपको यह सीखना होगा कि प्रत्येक वस्तु में हर समय विद्यमान कृष्ण से सम्पर्क कैसे किया जाय। इसे योग-पद्धति के अन्तर्गत समझाया गया है। कृष्णभावनामृत भी योग है, पूर्णयोग, सभी यौगिक पद्धतियों में श्रेष्ठ योग। किसी योगी के आने पर हम चुनौती देते हुए कह सकते हैं कि यह सर्वोत्तम योग पद्धति है और साथ ही सरलतम भी। इससे पहले कि आप कुछ शक्ति का अनुभव करें, आपको कुछ सप्ताह शारीरिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होगी। वरन् कृष्णभावनामृत में कभी आप थकान का अनुभव नहीं करेंगे।

हमारे सभी विद्यार्थी कृष्णभावनामृत में अधिक से अधिक काम करने के लिए उत्सुक रहते हैं, ''प्रभुपाद मैं क्या कर सकता हूँ।?'' और वे वास्तव में ऐसा करते भी है; भौतिक जगत् में आप थोड़ा काम करने पर निर्बलता का अनुभव करने लगते हैं।

वस्तुतः मैं स्वयं भी कोई व्यायाम नहीं करता हूँ। मैं ७२ वर्ष का वृद्ध व्यक्ति हूँ। पिछले दिनो बीमार होने पर मैं भारत वापस लौट गया था। किन्तु मैं काम करना चाहता हूँ। वस्तुतः मैं इन सभी कामों से निवृत्त हो सकता था, किन्तु जहाँ तक बन सके, मैं काम करते रहना चाहता हूँ, मैं दिन-रात सीखते रहना चाहता

हूँ। रात को मैं डिक्टाफोन के साथ काम करता हूँ और य
मैं काम न करूँ तो मुझे बड़ा खेद रहता है। यही कृष्णभावनाम्
है। प्रत्येक व्यक्ति को काम करने के लिए उत्सुक रहना चाहिए
यह कोई निठल्लों का समाज नहीं है। हमारे पास बहुत से क
हैं, पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन, उनका विक्रय आदि।

केवल पता लगाइये कि आप कितने कृष्णभावनाभावित हो सक
हैं। यदि आप वास्तव में ही शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं, सु
रहना चाहते हैं तो कृष्णभावनामृत का विकास कीजिए और इस
प्रारम्भ कृष्ण के प्रति आसक्ति का विकास करने से होगा। इस
हमारे यहाँ निर्धारित प्रक्रिया है कि आप भगवत् श्रीविग्रह के सा
कीर्तन करें, नाचें और आध्यात्मिक आहार भगवान् को अ
करें। इससे आप और अधिक कृष्णभावनाभावित हो उठेंगे।

भगवद्गीता में वर्णित योगपद्धति इन दिनों पश्चिम में प्रच
नकली योग-पद्धति से नितान्त भिन्न है। पश्चिम में तथाक
योगियों द्वारा प्रचारित योग पद्धतियाँ प्रामाणिक नहीं हैं। योग क
है। प्रथम नियम है इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखना, योगी
मैथुन करने की अनुमति नहीं है। यदि आप मद्यपान करते
मांस भक्षण करते हैं और द्यूत क्रीड़ा में भाग लेते हैं तो
सब मूर्खता है। आप यह सब करते हुए योगी नहीं हो स
मैं यह जानकर अचम्भित रह गया कि एक योगी यहाँ आये
उन्होंने भारत में यह प्रचारित किया कि आप मद्यपान करते
भी योगी हो सकते हैं। यह योग-पद्धति नहीं है। यह कोई
स्तर नहीं है। आप चाहें तो इसे योग कह सकते हैं, परन्तु
मानक योग की पद्धति नहीं है।

योग-पद्धति का अभ्यास इस युग में विशेष रूप से

है। *श्रीमद्भागवत* में बताया गया है कि योग का अर्थ है, परमात्मा विष्णु पर ध्यान एकाग्र करना। वे हमारे हृदय में बसे हैं और उन पर अपना ध्यान एकाग्र करने के लिए आपको इन्द्रियों का निग्रह करना होगा। इन्द्रियाँ ठीक उत्तेजित घोड़ों के समान कार्य करती हैं। यदि आप अपने रथ के घोड़ों को नियन्त्रित न कर सके, तो यह बहुत भयानक सिद्ध हो सकता है। जरा कल्पना कीजिए कि आप रथ पर सवार हैं और आपके घोड़े उत्तेजित होकर आपको नरक में खींचे ले जा रहे हैं, तो आपकी क्या स्थिति होगी? योगपद्धति का अर्थ है इन्द्रिय-निग्रह। इन्द्रियों की तुलना साँप से भी की जा सकती है। साँप नहीं जानता कि उसका मित्र कौन है और शत्रु कौन है। वह किसी को भी काट सकता है और साँप के काटते ही मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार यदि अनियन्त्रित इन्द्रियाँ अपने मनमाने प्रकार से कार्य करती हैं तो आप समझ लीजिए कि आप भयानक स्थिति में हैं।

कहा जाता है कि बहुत विषयी होने पर मनुष्य अपने आपे में नही रहता, वह अपनी पहचान खो देता है और अपने आपको भूल जाता है। इन्द्रियों से उत्तेजित होकर मनुष्य अपने बच्चों और अपनी बेटी पर भी हमला कर बैठता है। इसलिए जो लोग आध्यात्मिक मार्ग पर प्रगति कर रहे हैं, उनके लिए ही नहीं, बल्कि सभी लोगों के लिए शास्त्रों में लिखा है कि उन्हें एकान्त में अपनी माँ, बेटी या बहन के साथ भी नहीं बैठना चाहिए। क्यों? क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं कि एक बार उनके उत्तेजित होने पर आप भूल जायेंगे कि वे आपकी माँ, बहन या बेटी हैं।

आप कह सकते हैं कि यह बात केवल कुछ मूर्ख लोगों के लिए ही सत्य हो सकती है। किन्तु शास्त्र कहते हैं, नहीं, आपको

अपनी माँ, बहन या बेटी के साथ भी एकान्त स्थान पर न
बैठना चाहिए, क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं कि आप कि
भी नैतिक हों, फिर भी आप यौनाकर्षण से खींचे जा सकते हैं।

इस विश्व में हमारी स्थिति, हमारा दुख, इस शरीर के का
है। यह शरीर सभी दुखों का कारण है, इसलिए हमारा अन्
लक्ष्य होना चाहिए, इस भौतिक शरीर से बाहर निकलकर आध्याति
शरीर में स्थित होना। यह विदेशी वातावरण है। आध्यात्मिक
से आत्मा स्वतंत्र है, किन्तु भौतिक वातावरण से यह बद्ध
गयी है और शरीर इसी पदार्थ से बना है।

मनुष्य यह जिज्ञासा करने के लिए योग्य है कि वह यह श
है या कुछ और। इसे आसानी से समझा जा सकता है। मैं
शरीर नहीं हूँ, क्योंकि मृत्यु के समय शरीर तो रहता है, य
प्रत्येक व्यक्ति चिल्लाता है, "ओह! बेचारा चला गया।" म
वहाँ पड़ा है, फिर आप क्यों कहते हैं कि वह चला ग
वह तो वहाँ पड़ा है। उस समय हम अनुभव कर सकते हैं
शरीर मनुष्य नहीं है। वास्तविक मनुष्य तो चला गया। ब
का शरीर युवा शरीर में परिणत हो जाता है और इस प्र
बचपन का शरीर चला जाता है। इसी प्रकार जब किशोर
चला जाता है तो मेरे जैसा वृद्ध शरीर भी स्वीकार करना प
है। शरीर बदल रहा है, वर्ष प्रति ही नहीं, प्रतिक्षण बदल
है। किन्तु फिर भी आप वही हैं। यह समझना बहुत अ
है। चूँकि शरीर है इसलिए दुख हैं। प्रत्येक व्यक्ति जीवन के
क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में, राजनीतिक क्षेत्र में, या किसी
कार्यक्षेत्र में, सामाजिक या राष्ट्रीय क्षेत्र में इस दुख से नि
के यत्न में लगा है। कोई और काम नहीं है। राष्ट्रीय या साम

रूप में, व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में, हम सब दुख भोग रहे हैं और इस दुख का कारण है, शरीर।

योग का अर्थ है, जिज्ञासा। मैं कौन हूँ? यदि मैं यह शरीर नहीं तो फिर मैं क्या हूँ? मैं एक शुद्ध जीवात्मा हूँ। अब यदि मेरी शारीरिक या इन्द्रियों की गतिविधियाँ दोषपूर्ण हैं तो मैं अपने आपको समझ नहीं पाऊँगा कि मैं कौन हूँ। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि हम सब महान् मूर्ख हैं। मूर्ख क्यों? क्योंकि हम ये शरीर धारण किये हुए हैं, इसलिए मूर्ख हैं। यदि कोई आपको अपने मकान में आने के लिए आमन्त्रित करता है; परन्तु आप जानते हैं कि वहाँ भय है, तो क्या आप वहाँ जाना चाहेंगे? आप कहेंगे, ''ओह! नहीं, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा, वहाँ बहुत भय है। मैं वहाँ क्यों जाऊँ?'' इसी प्रकार क्या आपको नहीं लगता है कि शरीर संकटपूर्ण है? फिर आप बार-बार जन्म लेकर यहाँ क्यों आ रहे है? जब आप हवाई जहाज में उड़ते हैं तो आप हमेशा भयभीत रहते हैं कि कहीं जहाज दुर्घटनाग्रस्त न हो जाय और यह दुर्घटना क्या है? यह शरीर के कारण है। आत्मा पर दुर्घटना का कोई असर नहीं हो सकता। परन्तु आप फिर भी सदा ही भयभीत रहते हैं।

आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य है; क्योंकि आपका अस्तित्व है और आत्मा ने अनित्य शरीर का वरण किया है, इसलिए आप दुख भोगते हैं। तो समस्या यह है कि इससे कैसे निकला जाय जैसे आप ज्वर से निकलने का प्रयास करते हैं। ज्वर की स्थिति आपका शाश्वत जीवन नहीं है। शाश्वत जीवन आनन्दमय है, किन्तु ज्वर के कारण आप जीवन का आनन्द नहीं ले सकते। जब आप अस्वस्थ होते हैं तो आप बाहर नहीं निकल सकते।

आपको विश्राम और ओषधि की आवश्यकता होती है। किन्
हम इन्हें नहीं पसंद करते, "मैं आखिर अस्वस्थ होऊँ भी क्यों
फिर भी आप अस्वस्थ हैं। इसी प्रकार सदैव हमें यह जान
चाहिए कि शुद्ध आत्मा की शरीरबद्ध अवस्था एक रुग्ण अवस्
है और यदि कोई यह भी नहीं जानता कि वह रोगी है तो व
निश्चय ही मूर्ख है। वह प्रथम श्रेणी का मूर्ख है।

शास्त्रों में लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति मूर्ख ही जन्म ले
है। चूँकि उसका शरीर होता है, इसलिए वह मूर्ख ही जन्म ले
है। कोई भी जीव, अमरीकी या भारतीय, कुत्ता या बिल्ली इस
मुक्त नहीं है। बस, आप रोग तक आ पहुँचे हैं। यदि आप अनुभ
करते हैं कि "मैं एक अमरीकी हूँ," तो यह एक प्रकार
रोग है; यदि आप अनुभव करते हैं कि "मैं भारतीय हूँ"
यह भी एक प्रकार का रोग हैं, यदि आप अनुभव करते हैं
मैं बिल्ली हूँ तो यह भी रोग है, न तो आप कुत्ते हैं, न बिल
है, न भारतीय हैं, न गोरे हैं, न काले हैं, आप आत्मा हैं—य
आपकी पहचान है। और यदि कोई यह सत्य नहीं जानता
"मैं शुद्ध आत्मा हूँ।" तो उसके सभी कार्य असफल होते हैं।

ईसा मसीह ने भी इसी प्रकार की शिक्षा दी, "यदि तुम अ
आत्मा को खो कर सम्पूर्ण विश्व को प्राप्त कर लेते हो तो
इससे क्या लाभ होता है?" लोग नहीं जानते कि वे कौन
फिर भी वे पागलों की तरह काम करते रहते हैं। जरा देखि
ये सब लोग काम में लगे हैं। ये सभी पागल है, न तो
अमरीकी हैं या भारतीय हैं और न ही जर्मन या जापानी।
इनमें से कुछ भी नहीं हैं। उन्हें इस बुरे स्थान—पृथी—पर
का अवसर दिया गया है और इस प्रकार एक विशेष स्थान

जन्म लेने के कारण उनका विशेष जाति का शरीर है और बस वे उसी के पीछे पागल हैं।

भगवद्गीता में कहा गया है कि जैसे हमारे बाहरी वस्त्र बदले जाते हैं ठीक उसी प्रकार शरीर भी बदला जाता है। योग का अर्थ है इस भौतिक शरीर से बाहर निकलने की प्रक्रिया। जैसे आप बार-बार वस्त्र बदलते रहते हैं, उसी प्रकार आप जन्म और मृत्यु को प्राप्त करतें हैं। यही आपके दुखों का कारण है। यदि आप यह नहीं समझते तो आपके सभी कार्यों का अन्त असफलता में होगा।

योग का अर्थ है, इस शरीर से बाहर निकलना और इसका अर्थ है अपने-आपको जानना। माता-पिता ने इस शरीर को जन्म दिया है। इसी प्रकार शुद्ध आत्मा के रूप में आप भी इस देह के जन्म के स्रोत हैं। हमारा आशय किसी ऐतिहासिक तिथि से आरम्भ होकर किसी अन्य दिन को समाप्त होने वाले जन्म से नहीं है। नहीं, आत्मा का यह स्वरूप नहीं है। उसका न कोई आदि है और न अन्त। परन्तु *भगवद्गीता* में कहा गया है कि आत्मा भगवान् का ही विभिन्न अंश है। भगवान् नित्य हैं। आनन्दमय हैं। परम पुरुष भगवान् की स्थिति यह है कि वे आनन्दमय हैं, नित्य हैं और ज्ञानमय हैं। और उस परम भगवान् से विभिन्न न होने के कारण हममें भी हमारे अणु आकार के अनुसार आंशिक आनन्द और नित्यता है। तथा हम उसी आंशिक मात्रा में ज्ञान से परिपूर्ण हैं।

सभी प्राणियों में मनुष्य को सबसे अधिक बुद्धिमान् माना गया है, परन्तु वे अपनी बुद्धि का दुरूपयोग कर रहे हैं। कैसे? वे अपनी बुद्धि को पाशविक प्रवृत्तियों में नियोजित करके उसका दुरुपयोग

कर रहे हैं। पाशविक प्रवृत्तियाँ हैं—आहार, निद्रा, भय और मैथुन
यदि आप आधुनिक सभ्यता की प्रवृत्ति का विश्लेषण करें
पायेंगे कि प्रत्येक मनुष्य पशु-जीवन के इन चार सिद्धान्तों में
व्यस्त है। वे लोग सोते हैं और आरामप्रद निद्रा के लिए ग
का निर्माण करते हैं। वे आहार की प्रवृत्ति के लिए सुस्वादु व्यंज
बनाते हैं और विषय-भोग की आवश्यकता के लिए वे बहुत
उत्तम रीति से अपनी वासना को उत्तेजित करते हैं। और ब
से अणु-बमों के द्वारा वे अपने देश की रक्षा कर रहे हैं—
भय की प्रवृत्ति है।

परन्तु ये प्रवृत्तियाँ आप जानवरों में भी पायेंगे। वे भी अ
ढंग से निद्रा लेते हैं और आत्मरक्षा में प्रवृत्त होते हैं। भले
उनके पास अणु-बम न हो फिर भी वे आत्मरक्षा के लिए क
न कोई उपाय ढूँढ़ ही लेते हैं। या तो आप अपने शत्रु
मार डालें या फिर वह आपको मार डालेगा किन्तु वास्तव
बचाव कहीं नहीं है। आप अपना बचाव नहीं कर सकते।
कहीं आप अणु-बम गिरायेंगे तो न्यूक्लीय रेडियोधर्मिता के का
आप भी आहत होंगे। इसलिए आपकी समस्याओं का यह समाध
नहीं है। समस्या का समाधान तो यह है कि आप जीवन
बद्धावस्था से बाहर निकल आएँ। इसी को योग कहते हैं।
का अर्थ है स्वयं को सर्वोच्च से जोड़ना।

कोई सर्वोपरि है। यह भौतिक सृष्टि कितनी सुन्दर है?
आपको नहीं लगता कि इसके पीछे आपका कोई मित्र है? आ
कितना सुन्दर है, अनाज उत्पन्न होता है, चन्द्रमा अपने नि
काल में उगता है, सूर्य अपने नियत समय पर निकलता है, अ
स्वास्थ्य के लिए और सभी सौर मण्डलों के लिए वह उ

प्रदान करता है। सभी कुछ सुव्यवस्थित है और फिर भी मूर्ख कहते हैं कि इसके पीछे किसी का मस्तिष्क नहीं है, यह तो सब स्वतः हो रहा है।

सत्य तो यह है कि भगवान्—कृष्ण—हैं और हम सब उनके अभिन्न अंश हैं। इस भौतिक जगत् में हम किसी न किसी रूप में बद्ध हैं। परन्तु अब हमें यह मानव शरीर मिला है। अतः हमें इस जाल से छुटकारा पाना है। परन्तु छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। जब तक आप अपनी कृष्णभावना का विकास नहीं कर लेते हैं तब तक आप इस जाल से बाहर नहीं निकल सकते। कृष्णभावनामृत कृत्रिम नहीं है—यह मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है। कृष्णभावनामृत या भगवद्भावना आपके अन्दर है। क्या आपको नहीं लगता कि कीर्तन के समय, जो व्यक्ति जितना अधिक निर्दोष होता है, वह उतनी ही जल्दी कीर्तन करना आरम्भ कर देता है। बच्चे तत्काल ही ताली बजाकर नाचने लग जाते हैं। यह उनके भीतर है और कृष्णभावनामृत बहुत सरल है।

इसलिए जब तक आप कृष्णभावनामृत का विकास नहीं कर लेते, तब तक बद्ध जीवन के जाल से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं है। आपको यह समझना होगा। यह कोई भावुकता नहीं है। नहीं, यह एक महान् विज्ञान है। आपको इसे अच्छी रीति से समझना है, तब मानव-जीवन सफल होगा। अन्यथा यह निष्फल होगा। आप एक बहुत ही महान् राष्ट्र हो सकते हैं, परन्तु यह जीवन की समस्या का हल नहीं है।

कृष्ण की कृपा से मैं अपनी जीवनी शक्ति से आपकी सेवा में समर्थ हूँ। मैंने १९६७ में अस्वस्थता के कारण अमेरिका छोड़ दिया था, परन्तु जीवन और मृत्यु सब कृष्ण पर ही निर्भर है।

मैंने सोचा, "मैं वृन्दावन वापस चला जाऊँ, क्योंकि वृन्दावन पवित्र स्थान है, जहाँ कृष्णभावनामृत अधिक प्रबल है।" मैंने से कि मैं वहाँ जाकर कृष्णभावनामृत में प्राण छोड़ दूँगा, वास में यदि आप कृष्णभावनामृत के वातावरण में हों तो यहाँ भी वृन्दावन का अनुभव कर सकते हैं। वृन्दावन एक ऐसा वि स्थान नहीं है जिसे वृन्दावन के नाम से पुकारा जाता है। कृ कहते हैं "मैं भगवत् धाम वैकुण्ठ में निवास नहीं करता हूँ, ही मैं योगी के हृदय में निवास करता हूँ" योगी यह जा चाहता है कि हृदय के भीतर कृष्ण कहाँ स्थित हैं। परन्तु कृ कहते हैं, "मैं दिव्याकाश में स्थित अपने धाम में निवास करता हूँ। न ही मैं योगी के हृदय में हूँ।" तब आप निवास करते हैं? कृष्ण कहते हैं, "मैं वहाँ रहता हूँ जहाँ शुद्ध भक्त मेरा गुणगान करते हैं।" वही वृन्दावन है।

इसलिए यदि यही वृन्दावन है, तो मैं यहीं हूँ। कोई अ नहीं पड़ता। जहाँ कहीं बिजली का प्रकाश होगा, वहाँ बि तो होगी ही। यह समझना बहुत आसान है। इसलिए जहाँ कृष्णभावनामृत होगा वहीं वृन्दावन होगा। यदि हम हरे कृष्ण मह का कीर्तन करें तो कृष्ण की कृपा से वृन्दावन का निर्माण सकते हैं। कृष्णभावनामृत में पूर्णता प्राप्त कीजिए; और इसके जो दर्शन है उसे समझने का प्रयास करें। यह विज्ञान है, मनगढ़ंत वस्तु नहीं। हम किसी भी दृष्टिकोण से यह बात सकते हैं।

कृष्णभावनामृत मानव-जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकत इसे सीखें और इसका महत्त्व समझें। इसे समझें और इसे आत करें। और फिर दूसरों को सिखाएँ। यह बहुत सरल है। यदि

अपराधहीन अवस्था में महामन्त्र का कीर्तन करते हैं तो सभी कुछ आपके भीतर से प्रकाशित हो जाएगा क्योंकि कृष्ण आपके भीतर ही स्थित हैं। यदि आप दृढ़ हैं और कृष्ण के साथ ही कृष्ण के पारदर्शी माध्यम, गुरु महाराज, में आप श्रद्धा और विश्वास रखते हैं तो वहाँ कृष्ण उपस्थित हैं। वेदों में कहा गया है कि यदि भगवान् में आपका निर्विवाद विश्वास है और कृष्णभावनामृत की शिक्षा देने वाले अपने प्रामाणिक गुरु के प्रति भी निर्विवाद श्रद्धा है तो सभी वैदिक ग्रन्थ प्रामाणिक रूप से आपके समक्ष प्रकट हो जाएँगे।

यह प्रक्रिया आध्यात्मिक है। इसके लिए किसी भौतिक योग्यता की आवश्यकता नहीं। अनेक मीमांसक, जिन्हें अनुभूति नहीं हुई है, भ्रम में डूबे हुए हैं और अपना समय व्यर्थ बिता रहे हैं। वे अपनी शिक्षा से कितना भी ज्ञान अर्जित कर लें, वे मूर्ख ही बने रहते हैं, परन्तु हमारे कृष्णभावनाभावित विद्यार्थी अपने जीवन में, अपने सुख में और अपने यौवन में परिवर्तन का अनुभव करते हैं। यह वास्तविकता है।

मेरे प्रिय युवक और युवतियो, मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप कृष्णभावनामृत को बहुत गम्भीरता से अपनाएँ। तभी आप सुखी होंगे और आपका जीवन पूर्णता को प्राप्त होगा। इससे आपके जीवन में पवित्रता का योग होगा। यह छल नहीं है। हम यहाँ धन जमा करने नहीं आये हैं। धन तो कृष्ण देते हैं। मैं भारत जाता आता रहता हूँ और केवल मैं ही नहीं, मेरे शिष्य भी। धनी व्यक्ति को इसके लिए बहुत-सा धन व्यय करना होगा। इस यात्रा का अर्थ है १० हजार डॉलर का व्यय, किन्तु हम लोगों के ध्येय हैं कृष्ण तो वे ही हमें प्रदान करेंगे। मैं नहीं जानता

कि धन कहाँ से आता है, किन्तु कृष्ण देते हैं। कृष्णभावनामृ में आप सुखी रहेंगे। आप युवा पीढ़ी के हैं। अपने देश अ समाज के फूल हैं। कृष्णभावनामृत की इस दिव्य पद्धति का अभ्या करें। सुखी रहें और दूसरों को सुखी बनाएँ। यही जीवन का वास्तवि लक्ष्य है।



५

हमारा वास्तविक जीवन

भगवद्गीता में कहा गया है कि हजारों मनुष्यों में से कोई एक ही अपने जीवन को पूर्ण बनाने के लिए प्रयत्न करता है। मनुष्य भी पशु है, किन्तु उसमें एक विशेष अधिकार मिला है, वह है विवेक बुद्धि। यह विवेक बुद्धि क्या है? तर्कशक्ति। किन्तु तर्कशक्ति तो कुत्ते और बिल्ली में भी है। मान लें एक कुत्ता आपके पास आता है; यदि आप उसे कहते हैं, "हट!" तो वह समझ जाएगा। कुत्ता यह समझ जाएगा कि आप उसे नहीं चाहते, इसलिए कुछ तर्कशक्ति तो उसमें भी है फिर मनुष्य की विशेष तर्कशक्ति क्या है?

जहाँ तक शारीरिक आवश्यकताओं का सम्बन्ध है, तर्कशक्ति तो पशुओं में भी होती है। यदि बिल्ली रसोई में जाकर चुपके से दूध चुराना चाहती है तो इसके लिए उसके पास अच्छी तर्कशक्ति होती है; वह देखती रहेगी कि स्वामी कब बाहर जायें और कब वह दूध चट कर जाय। इसलिए आहार, निद्रा, मैथुन और आत्मरक्षा की चार पाशविक प्रवृत्तियों के लिए तर्कशक्ति तो पशुओं में भी होती है। फिर मनुष्य में ऐसी कौन-सी विशेष बुद्धि है, जिसके कारण उसे विवेकशील प्राणी कहा जाता है?

वह विशेष तर्कशक्ति है, जिज्ञासा कि "मैं क्यों दुःख सहता हूँ?" यह विशेष तर्कशक्ति है। जानवर भी दुःख झेलते हैं, किन्तु वे नहीं जानते कि इसका निवारण कैसे किया जाय। परन्तु मनुष्य

कितने ही क्षेत्रों में वैज्ञानिक क्षेत्र में दार्शनिक क्षेत्र में, सांस्कृति क्षेत्र में और धार्मिक क्षेत्र में प्रगति कर रहा है, क्योंकि वह सु होना चाहता है। "सुख का बिन्दु कहाँ है?" यह तर्कशक्ति मनु को विशेष रूप से प्रदान की गयी है। इसलिए *गीता* में कृ द्वारा कहा गया है, "हजारों मनुष्यों में से कोई एक ही जान सकता है।"

सामान्यत: मनुष्य भी जानवरों के समान ही आचरण करते वे शरीर की आवश्यकताओं मात्र के परे कुछ नहीं जानते: खाएँ, कैसे सोएँ, कैसे संभोग करें और कैसे आत्मरक्षा करें। *भगवद्गी* में कहा गया है कि हजारों लोगों में से कोई एक में ही तर्कशक्ति पैदा हो सकती है; "मैं क्यों दु:ख झेल रहा हूँ वह यह प्रश्न पूछता है। हम दु:ख नहीं झेलना चाहते, कि दु:ख हम पर थोप दिये जाते हैं। हम बहुत ठंड नहीं चा किन्तु बहुत अधिक ठंड और गर्मी हम पर थोप दी जाती है।

जब इस तर्कशक्ति को जगाने की कोई प्रेरणा होती है, उसे *ब्रह्मजिज्ञासा* कहते हैं। यह *वेदान्त-सूत्र* में बताया गया पहले श्लोक में कहा गया है कि मानव जीवन का उद्देश्य यह प्रश्न पूछना कि दुख की समस्या की समस्या को कैसे किया जाए?

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मनुष्य का यह विशेषाधिकार अच्छी संगति के जाग्रत नहीं होता। जैसे आज हमारे पास कृष्णभाव का सत्संग है। यदि हमें सत्संग मिल जाय, जहाँ अच्छी पर चर्चा होती हो तो मनुष्य में उनके विशेषाधिकार विवेक जागृति होगी। जब तक यह प्रश्न उसके मन में नहीं उठता, समझना चाहिए कि सभी कार्य-कलाप उसे पराजय की ओर

ले जा रहे हैं। वह पशु के समान जीवन जी रहा है। परन्तु जब उसमें—मैं क्यों दुःख भोग रहा हूँ? मैं क्या हूँ? क्या मैं दुःख भोगने के लिए हूँ? क्या मैं कठिनाई झेलने के लिए हूँ—ये प्रश्न उठते हैं तो वह पशु जीवन नहीं जीता।

मैं प्रकृति के और राज्य के नियमों के कारण ही कष्ट झेल रहा हूँ, इसलिए मुक्ति का अभिप्राय यह है कि मैं इन कष्टों से छुटकारा कैसे पाऊँ। *वेदान्त-सूत्र* में भी लिखा है कि मेरी आत्मा या मेरा सच्चा स्वरूप, स्वभाव से आनन्दमय है; फिर भी मैं दुःख झेला रहा हूँ। भगवान् कृष्ण आगे कहते हैं कि जैसे ही ये प्रश्न मन में उठने लगते हैं, मनुष्य धीरे-धीरे भगवान् के समीप आने लगता है। जिनके मन में ये प्रश्न उठ चुके हैं, वे पूर्णता के मार्ग के पथिक कहे जाते हैं। और जब भगवान् तथा भगवान् से हमारे सम्बन्ध का प्रश्न आता है तो यह हमारे जीवन की अन्तिम पूर्णता है।

अब कृष्ण कहते हैं कि हजारों लोगों में से कोई एक इस जीवन में पूर्णता प्राप्त करने कर प्रयत्न करता है; और पूर्णता के पथ पर चलने वाले ऐसे लाखों व्यक्तियों में से कोई एक ही कृष्ण को जान पाता है। अतएव भगवान् कृष्ण को जानना बहुत सरल नहीं है, परन्तु साथ ही यह सबसे सरल भी है, यदि आप निर्धारित शिक्षाओं का अनुसरण करें।

भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने हरे कृष्ण के महामन्त्र के कीर्तन का प्रवर्तन किया है। वैसे इसका प्रवर्त्तन उन्होंने ही नहीं किया था। यह शास्त्रों में पहले से लिखा है। परन्तु उन्होंने इस सूत्र का विशेष रूप से प्रचार किया है। वर्तमान युग में आत्म-साक्षात्कार की यह सरलतम विधि है, केवल आप हरेकृष्ण के महामन्त्र का

कीर्तन करें। प्रत्येक व्यक्ति ऐसा कर सकता है। अपनी कक्ष
शायद मैं ही अकेला भारतीय हूँ। मेरे सभी विद्यार्थी अम
हैं और वे अच्छी तरह नाचते-गाते हुए कीर्तन में भाग लेत
इससे सिद्ध होता है कि इसका अभ्यास किसी भी देश में
भी स्थान पर किया जा सकता है। इसलिए यह सबसे सरल
हो सकता है कि आप *भगवद्गीता* का दर्शन न समझ
यह भी बहुत कठिन नहीं है, किन्तु फिर भी यदि आप
हैं कि आप इसे नहीं समझ सकते तो हरे कृष्ण महामन्
कीर्तन तो कर ही सकते हैं।

यदि हम भगवान् अर्थात् कृष्ण को जानना चाहते हैं तो
आरम्भ यहीं से होगा। कीर्तन सबसे सरल आरम्भ है। अ
कृष्णभावनामृत संघ में अनेक विद्यार्थी हैं। इस संघ को खु
एक साल से थोड़ा अधिक ही हुआ है। परन्तु कृष्ण की
से कुछ विद्यार्थी केवल कीर्तन करते हुए ही इतना आ
गए हैं कि अब वे भगवत् ज्ञान पर चर्चा कर सकते है
वे आसानी से मानवीय प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं।
दिव्य ध्यान की यह सबसे सरल विधि है।

कृष्ण कहते हैं कि लाखों में से कोई एक व्यक्ति
जान सकता है, किन्तु भगवान् चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रव
कृष्ण के इस महामन्त्र के कीर्तन-नृत्य से बहुत थोड़े स
ही आप कृष्ण को जान सकते हैं। ज्ञान का आरम्भ कृ
नहीं बल्कि उन वस्तुओं से होता है, जिन्हें हम प्रतिदिन
के अभ्यस्त हो गये हैं।

पृथ्वी स्थूल है। यदि आप इसका स्पर्श करें तो इसकी
का अनुभव कर सकते हैं। किन्तु जैसे ही पृथ्वी सूक्ष्म होने

है तो यह जल बन जाती है और इसका स्पर्श मृदु लगने लगता है और फिर जल से आग और अधिक सूक्ष्म हो जाती है। आग या बिजली के बाद हवा बनने पर वह और अधिक सूक्ष्म हो जाती है। आग या बिजली के बाद हवा बनने पर वह और अधिक सूक्ष्म हो जाती है। हवा के बाद आकाश और अधिकं सूक्ष्म हो जाता है। आकाश के बाद मन और अधिक सूक्ष्म है और मन के बाद बुद्धि उससे अधिक सूक्ष्म है। और यदि आप आत्मा को समझने के लिए बुद्धि से भी परे जाएँ, तो यह और अधिक सूक्ष्म हो जाता है। इन तत्त्वों की सहायता से मनुष्य ने कितने ही प्रकार के विज्ञानों का आविष्कार किया है। अनेक वैज्ञानिक हैं। जैसे भूविशेषज्ञ, वे मिट्टी का किसी विशेष प्रकार का विश्लेषण करके बता सकते हैं कि इसमें कौन-कौन से खनिज पदार्थ हैं। कोई चाँदी, कोई सोना और कोई अभ्रक खोज निकालता है। ये स्थूल पदार्थ अर्थात् पृथ्वी का ज्ञान हैं। यदि आप और अधिक सूक्ष्म तत्त्वों का अध्ययन करें तो आप पानी, पेट्रोल, मद्यसार जैसे तरल पदार्थों का अध्ययन करते हैं। और अधिक सूक्ष्म द्रव्यों का अध्ययन करना हो तो आप पानी के बाद आग और बिजली का अध्ययन करते हैं और आपको कई तरह की पुस्तकें पढ़नी पड़ेंगी। और इस सूक्ष्म आग से आगे बढ़कर आप हवा का भी अध्ययन करते हैं। हमने वैमानिकी के क्षेत्र में काफी उन्नति कर ली है। हम इस बात का अध्ययन करते हैं कि विमान कैसे चलते हैं, उनका कैसे निर्माण होता है। अब स्पुतनिक और जेट जैसी कितनी ही वस्तुओं की खोज कर ली गयी है।

इसके बाद इलैक्ट्रोनिक्स जैसे वायवीय तत्त्वों के अध्ययन का क्रम शुरू होता है—एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में वायवीय रूपान्तरण।

इसके बाद और अधिक सूक्ष्म तत्त्व मन का अध्ययन होता
जिसके अन्तर्गत मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण का अध्ययन कि
जाता है। किन्तु बुद्धि और तर्कवाद के लिए केवल दार्शनिक मीमां
ही सम्भव है। और आत्मा के विषय में क्या हुआ? क्या आत
का कोई विज्ञान है? भौतिकतावादियों के पास नहीं है। भौति
विज्ञान आकाश, मन और बुद्धि के अध्ययन तक पहुँच गया
किन्तु इसके बाद के तत्त्वों का अध्ययन नहीं हो रहा है। बु
के बाद कौन सा तत्त्व है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं है, किन्तु *भगवद्गी*
में इसका वर्णन मिलता है।

भगवद्गीता का आरम्भ बुद्धि के बाद के तत्त्व के अध्य
से होता है। जब प्रारम्भ में ही अर्जुन दुविधा में पड़ गया,
उसकी बुद्धि भ्रमित हो गई कि वह युद्ध करें या न करे। कृ
गीता का आरम्भ वहीं से करते हैं, जहाँ बुद्धि विफल होती
आत्मज्ञान का आरम्भ कैसे होता है? यह बच्चे के खेल
तरह सरल है। आप समझ सकते हैं कि बच्चे का शरीर अ
बहुत छोटा है, किन्तु एक दिन यही बच्चा आपकी या मेरी
बड़ा हो जाएगा। किन्तु आत्मा वही रहेगी। इसलिए बुद्धि से अ
यह समझ सकते हैं कि यद्यपि शरीर बदल गया है, फिर
आत्मा वैसे ही है। वही आत्मा जो कभी बच्चे के शरीर में
आज वृद्ध शरीर में भी विद्यमान है। इसलिए आत्मा नित्य
और केवल शरीर बदल गया है, यह समझना बहुत आसान
शरीर का अन्तिम परिवर्तन है मृत्यु। हर क्षण, हर दिन, हर
शरीर बदल रहा है, किन्तु अन्तिम परिवर्तन उस समय आता
जब शरीर कार्य करने में असमर्थ हो जाता है तो आत्मा
नया शरीर ग्रहण करना ही होता है। जिस प्रकार यदि मेरे

बहुत जीर्ण हो गये हैं तो मैं उन्हें पहने नहीं रह सकता, मुझे नये वस्त्र धारण करने ही पड़ते हैं। यही स्थिति आत्मा की है। जब शरीर बहुत जीर्ण हो जाता है तो दूसरा शरीर ग्रहण करना ही पड़ता है। इसे ही मृत्यु कहते हैं।

आत्मा के इसी आरम्भिक ज्ञान से *भगवद्गीता* का आरम्भ होता है। आप देखेंगे कि ऐसे बहुत कम लोग हैं, जो यह समझ पाएँगे कि आत्मा नित्य है और शरीर परिवर्तनशील है। इसलिए भगवान् कृष्ण कहते हैं कि लाखों में से कोई एक ही इसे जान पाता है। फिर भी ज्ञान तो विद्यमान है। यदि आप उसे जानना चाहेंगे तो यह कठिन नहीं है। आप उसे जान लेंगे।

अब हमें सबसे सूक्ष्म भौतिक तत्त्व अहंकार के अस्तित्व के बारे में जिज्ञासा करनी चाहिए। अहंकार क्या है? मैं शुद्धात्मा हूँ। परन्तु अपनी बुद्धि और मन की सहायता से मैं पदार्थ के सम्पर्क में आता हूँ और मैंने पदार्थ को अपना स्वरूप मान लिया है। यही मिथ्या अहंकार है। मैं शुद्ध आत्मा हूँ, किन्तु मैं अपने मिथ्या स्वरूप को स्वीकार कर रहा हूँ। उदाहरणार्थ, मैंने भूमि को अपनी पहचान मान लिया है और मैं सोचता हूँ कि मैं भारतीय हूँ या अमरीकी हूँ। इसी को अहंकार कहते हैं। अहंकार का अर्थ है वह शुद्ध बिन्दु जहाँ शुद्धात्मा पदार्थ के सम्पर्क में आती है। यह सम्पर्क ही अहंकार है। अहंकार बुद्धि से भी अधिक सूक्ष्म है।

कृष्ण कहते हैं कि आठ भौतिक तत्त्व ये हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। अहंकार का अर्थ है मिथ्या स्वरूप। हमारा ज्ञानरहित जीवन इसी मिथ्या स्वरूप से शुरू हुआ है—कि मैं पदार्थ हूँ, जबकि मैं प्रतिदिन प्रशिक्षण देखता

हूँ कि मैं पदार्थ नहीं हूँ। आत्मा अविनाशी है जबकि पदार्थ परिवर्तनशी है। यह मिथ्या धारणा, अहंकार कहलाती है। मुक्ति का अर्थ अहंकार से छुटाकारा पाना। वह कौन सी स्थिति है? *अहं ब्रह्मास्मि* मैं ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा हूँ। वही मुक्ति का प्रारम्भिक चरण है।

इसमें सन्देह नहीं, कि ज्वर से पीड़ित रोगी का तापक्रम सामा स्तर ९८.६ डिग्री पर उतर सकता है। तब वह सामान्य है। यह उसके रोग का निवारण नहीं है। मान लीजिए, दो दिन त उसका तापक्रम ९८.६ डिग्री तक रहा, किन्तु भोजन तथा व्यवह के थोड़े से परिवर्तन से उसका तापक्रम तुरन्त बढ़कर १०० डि तक पहुँच गया। इसी प्रकार मात्र मन की शुद्धि से और मिथ अहंकार के स्वरूप (पहचान) की अस्वीकृति से —मैं यह श नहीं हूँ, मैं यह पदार्थ नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ—मुक्ति नहीं मि जाती। यह मुक्ति का प्रारम्भ मात्र है। यदि आप इस बात दृढ़ हैं— और जैसे आप ९८.६ डिग्री के तापमान को बन रखते हुए अपना कार्य करते हैं वैसे ही आप काम करते रहें— आप स्वस्थ व्यक्ति हैं।

उदाहरण के लिए, पश्चिम में आजकल नशासेवन के लिए प्र किया जा रहा है। लोग शारीरिक अस्तित्व को भूल जाना चा हैं। परन्तु आप कब तक इसे भूल पाएँगे? पुनः आप अ पूर्वस्थिति में पहुँच जाएँगे। आप नशासेवन से घण्टे दो घण्टे लिए भूल सकते हैं कि मैं यह शरीर नहीं हूँ, परन्तु जब आप वास्तव में स्वयं अपने आत्मज्ञान के स्तर पर नहीं प जाते, तब तक यह भावना स्थिर रहना सम्भव नहीं है। फिर हर व्यक्ति यह सोचने का प्रयत्न कर रहा है, "मैं यह श नहीं हूँ।" उन्हें यह अनुभव है कि वे स्वयं को शरीर म

के कारण इतना दुख उठा रहे हैं, इसलिए सोचते हैं कि "काश मैं स्वयं को शरीर मानना भूल सकता।"

यह केवल निषेधात्मक धारणा है। जब आपको वास्तविक अनुभूति होती है, तब "मैं ब्रह्म हूँ" केवल इस समझ से काम नहीं चलेगा। आपको ब्रह्म के कार्यों में संलग्न होना पड़ेगा; अन्यथा आपका पतन हो जाएगा। बहुत ऊँची उड़ान उड़ना ही चन्द्रमा पर पहुँचने की समस्या का हल नहीं है। आजकल मूर्ख लोग चन्द्रमा तक पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं। किन्तु वे केवल जमीन से २,४०,००० मील ऊपर जाकर चन्द्रमा को छूकर फिर वापस लौट आते हैं। उन्हें बड़ा गर्व है। बड़े जनसमूहों, बैठकों और सम्मेलनों में वैज्ञानिकी की बड़ी-बड़ी बातें की जाती हैं, किन्तु उन्होंने किया क्या है? इतने बड़े विस्तृत आकाश में २,४०,००० मील क्या है? यदि आप २,४०० लाख मील भी चले जायें तो भी आप सीमित ही रहेंगे। इसलिए इससे बात नहीं बनेगी। यदि आप आकाश में ऊँचे जाना चाहते हैं तो वहाँ कोई स्थायी धाम होना चाहिए, ताकि वहाँ आप विश्राम कर सकें और नीचे न गिर पड़ें। यदि आप विश्राम नहीं करेंगे तो नीचे गिरना पड़ेगा। वायुयान आकाश में पृथ्वी से ७ या ८ मील ऊपर चला जाता है, किन्तु वह तुरन्त नीचे आ जाता है।

इसलिए, केवल अहंकार को समझना अपने मिथ्या स्वरूप को समझने से ज्यादा अर्थ नहीं रखता है। केवल यह समझना कि मैं पदार्थ नहीं हूँ, आत्मा हूँ, पूर्णता नहीं है। निराकारवादी और शून्यवादी दार्शनिक केवल निषेधात्मक ढंग से सोचते हैं कि मैं यह पदार्थ नहीं हूँ, मैं यह शरीर नहीं हूँ। यह अधिक देर तक नहीं टिक सकता। आपको केवल यही नहीं समझना है कि आप

पदार्थ नहीं हैं, बल्कि स्वयं को आध्यात्मिक जगत् में संलग्न करन पड़ेगा। और उस आध्यात्मिक जगत् का अर्थ है, कृष्णभावनामृ में कार्य करना। वह आध्यात्मिक जगत् अर्थात् वास्तविक जीव का कार्य ही कृष्णभावनामृत है।

मैं मिथ्या अहंकार को पहले ही समझा चुका हूँ। यह न पदार्थ है और न ही आत्मा, बल्कि दोनों का संधिस्थल है ज आत्मा पदार्थ के सम्पर्क में आती है और अपने आपको भू जाती है। यह वैसे ही है जैसे सन्निपात का रोगी किंकर्तव्यविमू हो जाता है और धीरे-धीरे वह अपने आप को भूल जाता और वह पागल हो जाता है। वह शनैः शनैः भूलता है। इस प्रकार स्मृति का लोप आरम्भ होता है और एक बिन्दु ऐ आता है जहाँ वह पूर्णतया भूल जाता है। इसी प्रारम्भिक बि को अहंकार या मिथ्या अहंकार कहते हैं।

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।।

इस महामन्त्र की प्रक्रिया कीर्तन न केवल आत्मा की इस भ्रा का निवारण करता है, बल्कि उसके पार उस बिन्दु तक पहुँचा है, जहाँ शुद्ध जीवात्मा भगवान् श्री सच्चिदानन्द की पूर्ण प्रेमम सेवा में संलग्न हो। यह चेतना के विकास का शिखर है, अ वर्तमान में भौतिक प्रकृति की विभिन्न योनियों के चक्कर में भ्रम द्वारा विकास करती हुई जीवात्माओं का अन्तिम लक्ष्य है।

६

हरे कृष्ण मन्त्र

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥

इस महामन्त्र के कीर्तन से उत्पन्न दिव्य स्पंदन हमारी दिव्य चेतना को पुनः प्राप्त करने की एक श्रेष्ठ विधि है। जीवात्मा के रूप में हम सब मूल रूप से कृष्णभावनाभावित जीव हैं, किन्तु अनन्त काल से पदार्थ के साथ सम्पर्क में रहने के कारण, भौतिक वातावरण से हमारी चेतना दूषित हो गयी है। इस भौतिक वातावरण को, जिसमें हम अब रहते हैं, "माया" कहते हैं। *माया* का अर्थ है, वह वस्तु जो नहीं है। और यह माया क्या है? माया यह है कि हम सब भौतिक प्रकृति के स्वामी बनने का प्रयत्न कर रहे हैं, जबकि हम वास्तव में उसके कड़े नियमों की चंगुल में हैं। जब कोई दास कृत्रिम रूप से अपने सर्वशक्तिमान् स्वामी के सदृश बनने का प्रयत्न करता है तो उसे माया कहते हैं। हम भौतिक प्रकृति के साधनों का दोहन करने में लगे हैं, परन्तु वस्तुतः हम उसकी जटिलताओं में उलझते जा रहे हैं। इसलिए यद्यपि हम प्रकृति पर विजय पाने के कठोर संघर्ष में लगे हैं, तथापि हम उस पर और अधिक निर्भर हो गये हैं। भौतिक प्रकृति के विरुद्ध यह भ्रमपूर्ण संघर्ष हमारे शाश्वत कृष्णभावनामृत के पुनरोदय से एकदम रोका जा

सकता है।

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।।

यह मन्त्र हमारी मूल शुद्ध भावना को जगाने की दिव्य प्रक्रिय है। इस कीर्तन के दिव्य स्पंदन से हम अपने हृदय की सभी भ्रान्तिय को दूर कर सकते हैं। इन सभी भ्रान्तियों का मूल आधार यह मिथ्य धारणा है कि सभी वस्तुओं का स्वामी मैं ही हूँ।

कृष्णभावनामृत मन पर कृत्रिम रूप से आरोपित की जाने वाल भावना नहीं है। यह भावना जीवात्मा की मूल प्राकृतिक शक्ति है जब हम इस दिव्य ध्वनि को सुनते हैं तो यह भावना पुनः जाग्रि होती है। इस युग के लिए ध्यान सम्बन्धी इस सरलतम विधि क संस्तुति की गई है। व्यावहारिक अनुभव से भी यह समझा जा सक है कि इस महामन्त्र अर्थात् मुक्ति प्रदान करने वाले महान् उच्चारण से व्यक्ति दिव्य तल से आते हुए आध्यात्मिक आनन्द का तत्का अनुभव कर सकता है। जीवन की भौतिक धारणा में हम ले इन्द्रियतृप्ति में ही संलग्न रहते हैं, जैसे कि हम निम्नतर पशु अवस् में हों। इन्द्रियतृप्ति के स्तर से तनिक ऊपर उठने पर व्यक्ति मा के चंगुल से बाहर निकलने के लिए मानसिक कल्पना में संल हो जाता है। इस स्तर से और अधिक ऊपर उठने पर व्यक्ति पय बुद्धिमान् हो तो वह यह जानने का प्रयत्न करता है कि उसके भी और बाहर जितने कारण हैं उन सब का परम कारण क्या है और जब मनुष्य वास्तव में इन्द्रिय, मन और बुद्धि की अवस्था को पार करके आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर पर पहुँच जाता है वह दिव्य अवस्था पर पहुँच जाता है। हरे कृष्ण मन्त्र का यह की

आध्यात्मिक स्तर से ही किया जाता है। इसलिए यह ध्वनि-कंपन ऐन्द्रिक, मानसिक और बौद्धिक चेतनाओं के सभी निचले स्तरों को पार कर जाता है। इसलिए इस महामंत्र के कीर्तन के लिए मन्त्र की भाषा समझने, मानसिक कल्पना या किसी भी प्रकार के बौद्धिक समन्वय की आवश्यकता नहीं है। यह आध्यात्मिक स्तर से प्रक्रिया स्वतः ही हो जाती है। इसलिए बिना किसी पूर्वयोग्यता के कोई भी मनुष्य इस दिव्य ध्वनि के कम्पन में भाग ले सकता है। अधिक उन्नत अवस्था में पहुँचने के उपरान्त, निश्चय ही, मनुष्य से दिव्य ज्ञान के आधार पर अपराध करने की अपेक्षा नहीं की जाती।

आरम्भ में हो सकता है कि सभी प्रकार के आठों दिव्य आनन्द प्राप्त न हों। ये आनन्द हैं—१. मूक व्यक्ति की तरह स्तब्ध रह जाना, २. स्वेदसिक्त हो जाना, ३. शरीर के रोम-रोम खड़े हो जाना, ४. वाणी का अवरुद्ध हो जाना, ५. कम्पन, ६. शरीर का क्षीण होना, ७. आनन्दातिरेक में विलाप और ८. समाधि। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि थोड़े समय का कीर्तन मनुष्य को तत्काल ही आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचा देता है और इसकी पहली पहचान के रूप में व्यक्ति मन्त्र-गायन के साथ-साथ नृत्य करने की अन्तःप्रेरणा प्रदर्शित करता है। हमने इसे व्यवहार में देखा है। एक बालक भी कीर्तन और नृत्य में भाग ले सकता है। निश्चय ही जो व्यक्ति भौतिक जीवन में बहु उलझा हुआ है, उसे इस आदर्श स्थिति में पहुँचने में कुछ अधिक समय लगेगा। किन्तु ऐसा भौतिक जीवन में उलझा हुआ व्यक्ति भी बहुत जल्दी आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच जाता है। जब इसका कीर्तन प्रेम में डूबे भगवान् के सच्चे भक्त द्वारा किया जाता है तो श्रोताओं पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह कीर्तन भगवान् के शुद्ध भक्तों के मुख से ही सुना

जाना चाहिए, ताकि इसके तत्काल परिणाम देखे जा सकें। ज तक सम्भव हो, अभक्तों के मुख से कीर्तन नहीं कराया जाना चाहिए साँप के मुख से स्पर्श किया हुआ दूध विषैला हो जाता है।

"हरा" शब्द भगवान् की शक्ति का सम्बोधन है, कृष्ण अ राम शब्द स्वयं भगवान् के सम्बोधन हैं। कृष्ण और राम का अ है, परम आनन्द और "हरा" का अर्थ है भगवान् की परम आह्लाद शक्ति। सम्बोधन के लिए इसे "हरे" कहते हैं। भगवान् की प आह्लादनी शक्ति हमें भगवान् तक पहुँचने में सहायता प्रदान कर है।

बहिरंगा शक्ति माया भी भगवान् की विविध शक्तियों में से ए है और हम जीव भी भगवान् की तटस्था शक्ति हैं; जीव, मा से श्रेष्ठ माना जाता है जब श्रेष्ठ शक्ति निकृष्ट शक्ति के सम्पर्क आती है तो परस्पर विरोधी अवस्था उत्पन्न हो जाती है, कि जब तटस्था शक्ति "हरा" के सम्पर्क में आती है तो यह अप सामान्य आनन्द की अवस्था में स्थित हो जाती है।

हरे, कृष्ण और राम— ये तीन शब्द महामन्त्र के दिव्य ब हैं। कीर्तन, भगवान् और उसकी शक्ति के लिए आध्यात्मिक पु है ताकि भगवान् और यह शक्ति बद्ध जीवात्मा की रक्षा करें। कीर्तन ठीक उस बच्चे के रुदन की तरह है, जो माँ के लिए पु रहा हो। माँ "हरा" भक्त को परमपिता भगवान् की कृपा करने में सहायता प्रदान करती है और भगवान् मन्त्र का निष्ठा कीर्तन करने वाले भक्त के सामने प्रकट हो जाते हैं।

कलह और दम्भाचरण के इस युग में आध्यात्मिक अनुभूति लिए महामन्त्र के समान अन्य कोई साधन नहीं है—

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।।



७

भक्तियोग की कार्य-पद्धति

भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण अपने शिष्य अर्जुन से कहते है "मैं ज्ञान का सबसे गोपनीय अंश तुम्हारे सामने प्रकट कर र हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय सखा हो।" जैसा कि चौथे अध्या में कहा गया है, *भगवद्गीता* अर्जुन को इस कारण कही ग क्योंकि अर्जुन की एकमात्र विशेषता यह थी कि वह भक्त थ भगवान् कहते हैं कि *भगवद्गीता* का रहस्य अत्यन्त गोपनीय है शुद्ध भक्त हुए बिना तुम उसे नहीं जान सकते। भारत में *गी* के ६४५ भाष्य लिखे गये हैं। एक प्रोफेसर कहते हैं कि कृ चिकित्सक हैं और अर्जुन उनके रोगी। उन्होंने *गीता* का भा इसी दृष्टिकोण से लिखा है। इसी प्रकार अनेक भाष्यकार है। लो ने यह मान लिया है कि ये सब भाष्याकार पूर्ण हैं, तथा अपने मतानुसार शास्त्र की व्याख्या कर सकते हैं। परन्तु जहाँ त हमारा सम्बन्ध है हम स्वयं *भगवद्गीता* में दिये गये आदेशों अनुरूप ही इसे पढ़ना स्वीकार करते हैं। इसे गुरु-शिष्य परम के माध्यम से प्राप्त करना चाहिए। यह शिक्षा परमपुरुष द्वारा जा रही है, क्योंकि भगवान् कहते हैं, "तुम मेरे प्रिय सखा मैं चाहता हूँ कि तुम सुखी शांत और समृद्ध हो जाओ, इसीलि मैं तुमसे कह रहा हूँ।" कृष्ण चाहते हैं कि प्रत्येक जीव सु शान्त और समृद्ध हो जाय, परन्तु वे लोग ऐसा नहीं चाहते। की धूप सबके लिए है, किन्तु यदि कोई अन्धेरे में ही र

चाहे तो धूप उसके लिए क्या कर सकती है? इसलिए *गीता* का ज्ञान सबके लिए है। इस जीवन में अनेक योनियाँ हैं और ज्ञान के लिए भी अनेक उच्च-निम्न स्तर हैं—यह एक सत्य है। परन्तु कृष्ण कहते हैं कि यह ज्ञान सबके लिए है। यदि किसी का जन्म निम्न स्तर का है तो यह कोई महत्त्व की बात नहीं है। *भगवद्गीता* वह दिव्य विषयवस्तु प्रस्तुत करती है जो प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है, यदि वह चौथे अध्याय में वर्णित सिद्धान्त के अनुसार चलता है। वह यह है कि *गीता* गुरु-शिष्य-परम्परा से चली आ रही है: "मैंने सर्वप्रथम यह योग पद्धति सूर्यदेवता विवस्वान को सिखाई थी, जिसने इसे मनु को सिखाया और मनु ने इक्ष्वाकु को।" कृष्ण से यह गुरु-परम्परा चली आ रही है, किन्तु कालान्तर में यह गुरु-परम्परा लुप्त हो गयी; इसलिए, अर्जुन को नया शिष्य बनाया गया है। दूसरे अध्याय में अर्जुन अपने-आपको कृष्ण के प्रति समर्पित कर देता है। "अब तक हम मित्र की तरह बातें करते रहे हैं, किन्तु अब मैं आपको अपने आध्यात्मिक गुरु के रूप में स्वीकार करता हूँ।" इस परम्परा में यह सिद्धान्त मानने वाला कोई भी व्यक्ति गुरु को कृष्ण के समान ग्रहण करता है; तथा शिष्य अर्जुन की तरह होना चाहिए। भगवान् कृष्ण अर्जुन के गुरु के रूप में कह रहे हैं; और अर्जुन कहते हैं: "आप जो कुछ कहते हैं वह मैं स्वीकार करता हूँ।" तो आप भी *गीता* को इसी प्रकार पढ़ें—ऐसे नहीं, "मुझे यह ठीक लग रहा है, इसलिए मैं इसे स्वीकार करता हूँ; यह मुझे अच्छा नहीं लगता, इसे मैं अस्वीकार करता हूँ।" इस तरह पढ़ना मूर्खता है।

गुरु कृष्ण का प्रतिनिधि और भक्त होना चाहिए और शिष्य अर्जुन की तरह होना चाहिए। तभी कृष्णभावनामृत का अध्ययन

पूर्ण हो सकता है, अन्यथा यह समय का अपव्यय है। *श्रीमद्भागव*
में कहा गया है, "यदि कोई कृष्ण-विज्ञान को समझना चाहत
है तो उसे शुद्ध भक्तों के संग रहना चाहिए। जब शुद्ध भक्त
के बीच चर्चा होती है, तभी आध्यात्मिक भाषा की शक्ति क
पता चलता है। *गीता* की विद्वत्तापूर्ण चर्चा व्यर्थ है। *उपनिष*
में कहा गया है, "वह व्यक्ति जिसे भगवान् में अटूट विश्वा
है और इसी प्रकार भगवान् के प्रतिनिधि में भी विश्वास है, उस
सामने वैदिक भाषा का अर्थ अपने-आप प्रकट हो जाएगा।" हम
भक्त होने की योग्यता होनी चाहिए। भगवान् के प्रिय बनें।
गुरु महाराज कहा करते थे, "भगवान् को देखने का प्रयास
करो। ऐसे कार्य करो कि भगवान् स्वयं तुम्हें देख लें।" हमें अपने-आप
योग्य बनाना है। तुम्हारी योग्यता से भगवान् स्वयं तुम्हारे प
आएँगे और तुम्हें दर्शन देंगे।

यदि कोई व्यक्ति भगवान् को देख सकता है तो वह स
भौतिक कामनाओं से ऊपर है। हम भौतिक जगत् की अस्था
परिस्थितियों में सदा असन्तुष्ट रहते हैं; सुख अस्थायी है और अस्था
दशा भी अधिक समय तक नहीं रहेगी। सर्दी, गर्मी, द्वन्द्व अ
सभी आते जाते रहते हैं। परम अवस्था को प्राप्त करना ही कृष्णभावना
की प्रक्रिया है। कृष्ण का वास सभी के हृदय में है और जैसे-
आप शुद्ध होते जाएँगे, वे आपको मार्ग दिखाते जाएँगे। तथा अ
अन्त में इस देह को छोड़कर वैकुण्ठ धाम चले जाएँगे।

कृष्ण कहते हैं, "मुझे कोई नहीं जानता। मेरा प्रभाव,
शक्ति, मेरी सीमा महर्षि भी नहीं जानते, मैं सभी देवी-देवता
और ऋषियों का मूल जनक हूँ।" हमारे कितने ही पूर्वज
हैं, जिनके विषय में हम कुछ नहीं जानते और ब्रह्मा तथा देवी-देवता

के बारे में भी हमें कोई ज्ञान नहीं है। हम उस स्तर तक नहीं पहुँच सकते, जहाँ हम भगवान् को पूर्णरूपेण समझ सकते हैं। हम सीमित इन्द्रियों से ज्ञान एकत्र करते हैं और कृष्ण को इन्द्रियों के केन्द्र मन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। अपूर्ण इन्द्रियाँ पूर्ण ज्ञान को नहीं समझ सकतीं। मन और इन्द्रियों चालबाजी से भी भगवान् को प्राप्त नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि आप अपनी इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगा दें तो वे स्वयं इन्द्रियों के माध्यम से आपके सामने प्रकट हो जाएँगे।

लोग कह सकते हैं, "भगवान् को जानने का क्या लाभ है? भगवान् अपने स्थान पर रहें, मैं अपने स्थान पर रहूँ।" किन्तु शास्त्रों में लिखा है कि पुण्य-कर्मों से हम सौन्दर्य, ज्ञान और उच्च योनि में जन्म पाते हैं और पाप-कर्मों से हम दुःख उठाते हैं। दुःख तो हमेशा रहता है, पुण्य हो या पाप, किन्तु फिर भी दोनों में अन्तर होता है। जो भगवान् को जानता है वह सभी सम्भावित पाप-कर्मों के परिणामों से मुक्ति पा लेता है जो कई पुण्यों से भी प्राप्त नहीं हो सकती। यदि हम भगवान् को अस्वीकार करते हैं तो कभी सुखी नहीं हो सकते।

केवल मानव-समाज ही नहीं प्रत्युत, यदि आप देवी-देवताओं पर विचार करें, तो पाएँगे कि अधिक महान् और बुद्धिमान होने पर भी, वे कृष्ण को नहीं जानते। ध्रुव के निकट रहने वाले सात महर्षि भी कृष्ण को नहीं जानते, कृष्ण कहते हैं कि मैं ही मूल हूँ, इन सभी देवी-देवताओं का स्रोत हूँ। वे देवी-देवताओं के मात्र स्रोत ही नहीं, ऋषियों और ब्रह्माण्डों आदि के जनक भी हैं। *श्रीमद्भागवत* में वर्णन है कि भगवान् का विश्वरूप कैसे बना और किस प्रकार उनसे प्रत्येक वस्तु का उद्भव होता है।

कृष्ण परमात्मा और निराकार ब्रह्म-ज्योति के भी मूल हैं, जो उनमें स्थित चमकता हुआ प्रकाश है। "सभी पदार्थों, सभी विच का मैं ही स्रोत हूँ।" परम-सत्य को तीन अवस्थाओं में अनुभ किया जा सकता है परन्तु वह एक अद्वैत सत्य है। ब्रह्म (प्रकाश ज्योति), अन्तर्यामी परमात्मा और भगवान्—परम पुरुष—ये हैं-परमेश के तीन स्वरूप।

यदि कोई भी भगवान् को नहीं जानता तो वे कैसे जाने सकते हैं? वे तभी जाने जा सकते है, जब भगवान् स्वयं आपके सामने प्रकट कर दें। तब आप उन्हें जान सकते हैं। हम इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं और वे परम सत्य को नहीं पा सकतीं। आप विनम्र भाव अपनाते हैं और कीर्तन शुरू करते हैं तो जि से अनुभूति का प्रारम्भ होता है। भोजन करना और शब्द उच्च करना जिह्वा का कार्य है। यदि आप आध्यात्मिक आहार अ प्रसाद के लिए अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण रख सकते हैं और भग के दिव्य नामों का शब्द उच्चारण करते हैं, तभी आप जिह्वा समर्पण द्वारा अन्य सभी इन्द्रियों को नियन्त्रित कर सकते हैं। आप अपनी जिह्वा को नियंन्त्रित नहीं कर सकते तो आप अ इन्द्रियों पर भी नियंत्रण नहीं रख पायेंगे। "प्रसादम्" का आस्व करें और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत बनें। यह प्रक्रिया अ घर पर भी चल सकती है। कृष्ण को शाकाहारी भोजन अ करें, हरे कृष्ण मन्त्र का जप करें और वन्दना करें।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगत् हिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

प्रत्येक व्यक्ति भोजन अर्पित कर सकता है और तत्पश्चात्

मित्रों के साथ भोजन कर सकता है। कृष्ण के चित्र के सामने जप कीजिए और पवित्र जीवन बिताएँ। और परिणाम देखिए—सारा विश्व वैकुण्ठ बन जाएगा, जहाँ कोई चिन्ता नहीं होती। यहाँ हर कोई चिन्तित है, क्योंकि हमने यह भौतिक जीवन अपनाया है। आध्यात्मिक जगत् में ठीक इसके विपरीत होता है। परन्तु यह कोई नहीं जानता कि इस भौतिक धारणा से कैसे बाहर निकला जाए। नशीले पदार्थों के सेवन से कोई लाभ नहीं होता। शराब पीना खतम होते ही फिर चिन्ता घेर लेती है। यदि आप मुक्त होना चाहते हैं और आनन्द तथा ज्ञान से परिपूर्ण शाश्वत जीवन जीना चाहते हैं तो कृष्ण को स्वीकार करें। भगवान् को मात्र कृष्णभावनामृत की प्रक्रिया से ही जाना जा सकता है। अन्य किसी विधि से कृष्ण को नहीं जाना जा सकता।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि कोई भी उसे जीत नहीं सकता या प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु वे जीत लिए जा सकते हैं। कैसे? लोग अपने सहज रूप में ही बने रहें किन्तु पुस्तकों की व्यर्थ मीमांसा में न पड़ें। हजारों पुस्तकें छापी और पढ़ी जाती हैं और छह महीने के बाद फेंक दी जाती हैं। इस प्रकार से या किसी अन्य प्रकार से आप सर्वोच्च को कुन्द इन्द्रियों द्वारा दी गयी जानकारी पर मानसिक कल्पना से कैसे जान सकते हैं? यह सब शोधकार्य बन्द कीजिए। फेंक दीजिए इसे—बस विनम्र भाव अपनाइए और स्वीकार कीजिए कि आप सीमित हैं और भौतिक प्रकृति और भगवान् के अधीन हैं। कोई भी भगवान् के समकक्ष या उनसे ऊँचा नहीं हो सकता, इसलिए विनम्र बनिए। अधिकृत स्रोतों से भगवान् का यशोगान सुनने का प्रयत्न करें। यह अधिकार गुरु-परम्परा से चला आ रहा है। यदि आप अर्जुन

की तरह इसी अधिकृत परम्परा से ज्ञान प्राप्त करें तो यह वास्तवि रूप में अधिकृत गुरु-परम्परा हैं। यदि आप कृष्णभावनाभावित जायें तो भगवान् हमेशा ही आपके सामने प्रकट होने के लि तत्पर रहेंगे। महान् आचार्यों द्वारा बताये गये मार्ग का अनुस करें और तब सभी कुछ आपको ज्ञात हो जाएगा। हालाँकि अज्ञेय और अजेय हैं, परन्तु आप उन्हें घर बैठे जान सकते हैं।

यदि आप इस प्रक्रिया को स्वीकार करें और सिद्धान्तों अनुसरण करें तो परिणाम क्या होगा? जैसे ही इसे आप सम तो यह जान पाएँगे कि भगवान् ही सभी कारणों के मूल का हैं और वे किसी अन्य कारण से नहीं हुए हैं। वे सभी के स्वामी हैं। यह आँख बन्द करके स्वीकार करना नहीं है। भग ने आपको तर्क शक्ति दी है। परन्तु झूठे तर्कों में न पड़ें। आप दिव्य विज्ञान जानना चाहते हैं तो अपने आपको सम कर दें। केवल अधिकारी को ही समर्पित हों और उन्हें लक्ष से पहचानें। किसी मूर्ख या दुष्ट व्यक्ति के सामने समर्पण न ऐसे व्यक्ति की खोज करें, जो गुरु-परम्परा से चला आ रहा और जो परम-सत्य में पूर्ण विश्वास रखता हो। यदि आप व्यक्ति को पा लें तो, अपने-आपको उसके सामने समर्पित दें। और उसे प्रसन्न करने, उसकी सेवा करने और उससे जि द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करें। गुरु के प्रति समर्पण भगवान् के प्रति समर्पण है। ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रश्न करें कि समय अपव्यय के लिए नहीं।

प्रक्रिया तो है, परन्तु यदि हम मद्यपान में अपने समय अपव्यय करना चाहते हैं तो अजेय भगवान् के हम कभी नहीं कर सकेंगे। सिद्धान्तों का अनुसरण करें और धीरे-धीरे, नि

ही, बिना किसी संशय के, आप भगवान् को जान लेंगे। आप कहने लगेंगे, "हाँ, मैं आगे बढ़ रहा हूँ।" यह बहुत सरल है और आप इसे कार्यान्वित करके सुखी हो सकते हैं। अध्ययन करें, संगीत में भाग लें और प्रसाद ग्रहण करें। कोई आपको इस प्रक्रिया से ठग नहीं सकता। परन्तु, यदि आप स्वत: ही ठगे जाना चाहते हैं तो जाइए ठगों के पास।

अधिकृत स्रोत से ही इसे समझने की कोशिश करें और इसे अपने जीवन में अपनाएँ। नश्वर जीवों में आप सबसे बुद्धिमान् व्यक्ति बन जायेंगे, क्योंकि आप सभी पाप-कर्मों से छुटकारा पा लेंगे। यदि आप केवल कृष्ण के लिए ही कार्य करें तो आपको सभी परिणामों से छुटकारा मिल जाएगा। आपको इस बात की चिन्ता नहीं होगी कि क्या शुभ है और क्या अशुभ है, क्योंकि आप सर्वाधिक कल्याणकारी के सम्पर्क में रहेंगे। यही प्रक्रिया है। अन्ततः हम कृष्ण के सम्पर्क में आ सकते हैं। हमारा जीवन सफल हो जाएगा। हर कोई इसे अपना सकता है, क्योंकि यह बहुत सरल है।

यहाँ भगवान् कृष्ण द्वारा प्रस्तुत एक बहुत ही श्रेष्ठ सूत्र है। मनुष्य को कृष्ण की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। वे अजन्मा हैं और उनका कोई कारण नहीं है। हम सबको अनुभव है कि हमारा जन्म हुआ है और हमारा कोई कारण है। हमारे पिता हमारे कारण हैं। यदि कोई अपने आपको भगवान् समझता हो तो उसे यह सिद्ध करना होगा कि वह भी अजन्मा है और उसका भी कोई कारण नहीं। हमारा व्यावहारिक अनुभव है कि हमारा जन्म हुआ है, परन्तु कृष्ण का जन्म नहीं हुआ। हमें यह समझना होगा। यह समझने का अर्थ है, दृढ़ निश्चय होना कि वे आदि

कारण हैं, लेकिन किसी कारण का परिणाम नहीं। चूँकि उनक
कोई कारण नहीं है, वे सारी सृष्टि के स्वामी हैं। जो कोई इ
सरल सिद्धान्त को समझ लेता है, वह भ्रमित नहीं होता।

सामान्यतः हम भ्रम में ही रहते हैं। हम भूमि के स्वामित
का दावा करते हैं; परन्तु भूमि हमारे जन्म से पहले भी
और बाद में भी रहेगी। हम एक के बाद एक शरीर बदलते-बदल
कब तक दावा करते रहेंगे, "यह मेरी जमीन है। यह मेरी जमी
है।" क्या यह मूर्खता नहीं है? व्यक्ति को भ्रम से छुटकारा पा
होगा। हमें यह जानना चाहिए कि जीवन के भौतिक दृष्टिको
के अन्तर्गत हम जो कुछ भी करते हैं वह सब भ्रम है।
यह समझना होगा कि कहीं हम भ्रम में तो नहीं हैं? वस्तु
सभी बद्धजीव भ्रम के शिकार हैं। यदि कोई मनुष्य भ्रम से छुटका
पाना सीख लेता है तो वह सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता
यदि हम बन्धनों से मुक्त होना चाहते हैं तो हमें भगवान्
ज्ञान प्राप्त करना होगा। हमें इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहि
यह हमारा प्रमुख कर्तव्य है।

करोड़ों जीवों में कोई एक ज्ञानी हो सकता है। सामान्यतः
सब मूर्ख के रूप में ही पैदा होते हैं। जैसे ही हम जन्म
हैं, हमारे लिए हमारे माता-पिता हमारा पालन-पोषण करते
और शिक्षा प्रदान करते हैं जिस के परिणाम-स्वरूप हम अ
जमीन के लिए मिथ्या स्वामित्व जमाते है। राष्ट्रीय शिक्षा का
है, मनुष्य को और अधिक मूर्ख बनाना। क्या हम मूर्ख नहीं
हम एक के बाद दूसरे जीवन में अपनी देह वस्त्र की तरह बद
हैं। जब आपके इतने सारे मन हैं, इतने सारे वस्त्र हैं तो
इस वस्त्र का दावा क्यों करते हैं? यह क्यों नहीं समझते, '

वस्त्र तो सुन्दर है, परन्तु अगले ही क्षण मुझे दूसरे वस्त्र में रहना पड़ सकता है।" आप प्रकृति के नियन्त्रण में हैं, आप अपने वस्त्र का स्वयं चुनाव नहीं कर सकते: "प्रकृति! मुझे अमरीकी बनाओ" नहीं; भौतिक प्रकृति आपकी नियन्त्रक है, यदि आप कुत्ते की तरह जीवन व्यतीत करते हैं तो यह लीजिए कुत्ते का वेश। यदि आप भगवद्भावना-पूर्ण जीवन जीते हैं तो लीजिए, ये रहे भगवान्।

अनेक मूर्खों में से एकाध ही यह समझने का प्रयत्न करता है कि वास्तव में "मैं कौन हूँ?" कुत्ता? अमरीकी? रूसी? यही जिज्ञासा चलती रहती है। यदि आप जिज्ञासा रखते हैं तो आपको किसी और से पूछना होगा, केवल अपने आप से नहीं। यदि किसी स्थान पर सड़क पार करते हुए आप नहीं जानते तो आपको किसी पुलिसमैन या किसी भद्र-पुरुष से पूछना होता है। इसी प्रकार, "मैं क्या हूँ" यह जानने के लिए आपको किसी अधिकारी के पास जाना होगा। आध्यात्मिक गुरु क्या होता हैं? वह ऐसा व्यक्ति है जो कृष्ण-विज्ञान का वेत्ता है। साधारणतया कोई जिज्ञासा नहीं रखता, परन्तु यदि कोई व्यक्ति जिज्ञासा रखता है तो वह आगे बढ़ सकता है और समझ सकता है कि कृष्ण ही सभी कारणों के मूल कारण हैं।

शास्त्र और उच्चतर अधिकारी का अनुसरण करने वाले चार प्रकार के लोग कृष्ण के विषय में जिज्ञासा रखते हैं। जो लोग पाप कर्मों में लिप्त हैं, वे कोई जिज्ञासा नहीं कर सकते। वे सुरापान में लगे रहते हैं। धार्मिक और पुण्यवान् व्यक्ति ही जिज्ञासा करते हैं और भगवान् को प्राप्त करते हैं। लोगों को सुखी बनाने के लिए, उन्हें इस प्रक्रिया में सुविधा दी गयी है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय

कृष्णभावनामृत संघ का उद्देश्य है, भगवान् के ज्ञान को समझाना। आप सुख की कामना करते हैं। वह सुख यहाँ है। आप अप पाप-कर्मों के फल से दुःखी हैं, परन्तु यदि आपके किसी भ पाप-कर्म का कोई परिणाम नहीं होगा तो दुःख भी नहीं होगा जो मनुष्य कृष्ण को बिना संशय जानता है, वह निश्चय ही सभ पाप-पुण्य के परिणामों से मुक्त हो जाता है। कृष्ण कहते हैं, "मे पास आओ और मैं तुम्हें सभी कर्म-फलों से छुटकारा दिला दूँगा। आप इस पर अविश्वास न करें। वे आपको आश्रय दे सक हैं। उनके पास पूर्ण शक्ति है। यदि मेरे पास ऐसी कोई शा नहीं है, और यदि मैं ऐसा कोई वचन देता हूँ तो वह टूट भ सकता है।

यदि आप कृष्णभावनामृत के संग अपने आपको जोड़ ले तो कृष्ण के साथ आपके प्रसुप्त सम्बन्ध फिर से जाग्रत हो उठेंग आपका भगवान् के साथ सम्बन्ध है। इसमें अविश्वास की क बात नहीं। यह बिरी मूर्खता है। प्रसुप्त रूप में सम्बन्ध तो पह से ही है। आप कृष्ण की सेवा करना चाहते हैं, परन्तु मा के प्रभाव मात्र में आकर आप सोचते हैं कि कृष्ण से आप कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वतन्त्रता के नाम पर हम सब प्रकार मूर्खता किये जाते हैं, और सदा चिन्तित रहते हैं। जब हम अप इन प्रसुप्त भावनाओं को कृष्ण के साथ जोड़ दें तो हम कृष्णभावनाभा हो उठेंगे।

"भगवान् अजन्मा हैं", यह इस बात का परिचायक है वे भौतिक जगत् से भिन्न हैं। हमें अजन्मा होने का ऐसा क अनुभव नहीं है। इस शहर का जन्म हुआ था—इतिहास तिथि से भरा पड़ा है। परन्तु आध्यात्मिक प्रकृति अजन्मी है और तत्त्व

हम अन्तर देख सकते हैं। भौतिक प्रकृति का जन्म हुआ है। आपको यह समझना है; यदि कृष्ण अजन्मे हैं, तो वे दिव्य हैं— हममें से किसी के समान नहीं। कृष्ण कोई ऐसे विलक्षण व्यक्ति नहीं हैं, जिनका जन्म हुआ हो। उनका जन्म नहीं हुआ है, इसलिए मैं कैसे कह सकता हूँ कि वे सामान्य व्यक्ति हैं। कृष्ण *गीता* में कहते हैं, "जो मूर्ख और दुष्ट हैं, वे ही मुझे सामान्य मनुष्य समझते हैं," वे इस विश्व के सभी पदार्थों से भिन्न हैं। वे अनादि हैं, उनका कोई कारण नहीं है।

कृष्ण दिव्य हैं, किन्तु और भी व्यक्ति दिव्य हैं। हमारे शरीर भी कृष्ण के समान दिव्य हैं, किन्तु इनका जन्म हुआ है। वस्तुत: इनका जन्म नहीं हुआ है। ये अग्नि की चिनगारियों की तरह हैं। चिनगारियाँ अग्नि से जन्म नहीं लेतीं; फिर भी वास्तव में वे होती हैं। हमारा भी जन्म नहीं हुआ है। हम चिनगारियाँ हैं जो आदि रूप से निकली हैं। यदि हम जन्मे नहीं हैं तो भी यह चिनगारी कृष्ण से आती है। इसलिए हम भिन्न हैं। अग्नि की चिनगारी अग्निमय है पर मूल अग्नि नहीं है: गुणों की दृष्टि से हम श्रीकृष्ण के समान हैं। यह अन्तर उसी प्रकार का है, जैसे पिता और पुत्र के बीच होता है। पिता और पुत्र भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं। पुत्र पिता का विस्तार होता है, किन्तु वह यह घोषणा नहीं कर सकता कि वह पिता है। यह एक मूर्खता-पूर्ण बात होगी।

चूँकि कृष्ण स्वयं घोषणा करते हैं कि वे परम स्वामी है; इसलिए वे सबसे भिन्न हैं। यदि मैं न्यूयार्क राज्य का स्वामी हूँ, फिर भी मैं न्यूयार्क राज्य नहीं हूँ। पद-पद पर द्वैत-भाव है। कोई यह नहीं कह सकता कि वह पूरी तरह से भगवान् के साथ एकाकार है।

जब आप कृष्ण को और अपनी स्थिति को सही विश्लेषणात्मक ढंग से समझ लेंगे तो आप तत्काल सभी पाप-कर्मों के फल से मुक्त हो जायेंगे। यह प्रक्रिया आपको सहायता प्रदान करेगी। हरे कृष्ण का कीर्तन करें और अपने मन को शुद्ध करें। आपको सन्देश प्राप्त हो जाएगा। व्यक्ति को योग्य बनना होगा। यदि आप बिना किसी पारिश्रमिक के कीर्तन करते हैं और उसका श्रवण करते हैं तो आप भगवान् को प्राप्त कर लेंगे। सारी विषय-वस्तुएँ प्रकाशित और स्पष्ट हो उठेंगी।



८

परम ज्ञान के स्रोत

हमें वैदिक ज्ञान के परिपक्व फल के रूप में भगवद् चेतना रूपी विज्ञान विषयक सर्वोच्च ग्रन्थ *श्रीमद्भागवत* के रसास्वादन की विधि के विषय में जानना आवश्य है। *रस* संस्कृत शब्द है, जैसे सन्तरे या आम का रस। *श्रीमद्भागवत* के रचयिता हमसे निवेदन करते हैं कि आप कृपा करके *भागवत* के फल का रसास्वादन करने का प्रयत्न कीजिए। क्यों? मैं *भागवत* के फल का रसास्वादन क्यों करूँ? क्योंकि वैदिक यह कल्पतरु का परिपक्व फल है और कल्पतरु के रूप में आप जो भी कामना करें, वेदों से उसे प्राप्त कर सकते हैं। वेद का अर्थ है, ज्ञान। यह इतना परिपूर्ण है कि चाहे आप इस भौतिक जगत् का आनन्द प्राप्त करने की इच्छा करते हों, दोनों प्रकार का ज्ञान यहाँ उपलब्ध है। यदि आप वैदिक सिद्धान्तों का पालन करें तो आप सुखी हो जाएँगे। ये राज्य की आचार संहिताओं की तरह हैं। यदि नागरिक इनका पालन करें तो वे सुखी हो जायेंगे, कोई अपराधपूर्ण अतिक्रमण नहीं होगा और लोग सुखमय जीवन बितायेंगे। राज्य आपको बिना कारण कष्ट देने के लिए है, परन्तु यदि आप राज्य के नियमों का पालन करें तो दुःख का कोई प्रश्न ही नहीं रहेगा।

इसी प्रकार यह बद्धजीव, प्राणी, यहाँ इस भौतिक जगत् में आनन्द और भौतिक सुख के लिए आया है। और वेद हमारे पथ प्रदर्शक हैं: ठीक है, आनन्द कीजिए—परन्तु आप इन सिद्धान्तों

के अनुसार आनन्द कीजिए। इसी को वेद कहते हैं। इसलिए सब कुछ यहाँ उपलब्ध है। जैसे हम कभी कभी मन्दिर में विवाह संस्कार आयोजित करते हैं। यह विवाह-संस्कार क्या है? यह पुरुष और स्त्री, युवक और युवती का, लडके और लडकी का, मिलन है। वे पहले से वहाँ हैं और मित्र की तरह रहते हैं, फिर विवाह-संस्कार की क्या आवश्यकता है? यह वैदिक पद्धति है: वेदों में स्त्री-पुरुष के साथ साथ रहने का एवं यौन जीवन का वर्णन है; परन्तु विशेष नियमानुसार, ताकि आप सुखी हो सकें। अन्तिम उद्देश्य सुखी होना है। यदि आप वैदिक नियमों और प्रतिबन्धों का पालन करते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि आप आहार, निद्रा, भय और मैथुन से वंचित कर दिए जायेंगे। यह बात नहीं होगी। आपकी शारीरिक आवश्यकताएँ वही हैं, जो पशुओं की हैं। पशु भी आहार, निद्रा, मैथुन और आत्मरक्षा में प्रवृत्त होते हैं, इसलिए हमें भी इन वस्तुओं की आवश्यकता है, परन्तु वेदों में कुछ नियम निर्धारित किये गये हैं। आप उनका पालन करें ताकि दुःखी न हो पाएँ। यदि आप इन नियमों का पालन करते हैं तो अन्ततः उसका परिणाम यह होग कि आप भौतिक बंधन से छुटकारा पा लेंगे।

यह भौतिक जीवन जीवात्मा के लिए नहीं है। यह एक भ्रान्ति है कि आप इस भौतिक जीवन का उपभोग करना चाहते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण हमें कुछ आदेश देते हैं ताकि हम इस तरह से सुखी रह सकें कि अन्ततोगत्वा हम यह समझ लें कि यह हमारा उचित जीवन नहीं है। हमारे लिए आध्यात्मिक जीवन ही उचित है। ज्यों ही हम, "मैं ब्रह्म हूँ," इस आध्यात्मिक स्थिति को जान लेते हैं उसके उपरान्त ही हमारा मानव-जीवन पूर्ण हो

है। अन्यथा हम यदि अपने आध्यात्मिक जीवन की चिन्ता नहीं करते तो परिणाम यह होगा कि हमें वैसे ही रहना होगा जैसे कुत्ते और बिल्लियाँ रहते हैं। इस बात की पूरी सम्भावना है कि अगले जन्म में हम पशु की योनि प्राप्त करें और यदि संयोगवश हमने पशु-योनि प्राप्त कर ली तो इस मानव जीवन को दुबारा प्राप्त करने के लिए लाखों करोड़ों वर्ष लग जायेंगे। इसलिए मानव जीवन का उद्देश्य है, आत्म-साक्षात्कार और वेद हमारे पथ-प्रदर्शक हैं।

आप *भगवद्गीता* में पायेंगे कि कृष्ण कहते हैं कि वेदों के विधि-विधान के अध्ययन या अनुसरण करने का वास्तविक अर्थ है कृष्णभावनामृत के ज्ञान तक पहुँचना। *श्रीमद्भागवत* में भी यही बताया गया है। इसलिए वेद आपको अनेक जन्मों के बाद यह अवसर प्रदान करते हैं कि आप क्रमिक रूप में कृष्ण का ज्ञान प्राप्त करें। परन्तु *श्रीमद्भागवत* को जीवन का सार और वेदों का पका फल बताया गया है, क्योंकि *श्रीमद्भागवत* में सीधे बताया गया है कि इस जीवन में क्या आवश्यक है।

वेदों को चार भागों में विभाजित किया गया है—साम, ऋक्, अथर्व और यजु:। तत्पश्चात् पुराणों में इनकी व्याख्या की गई है, जो संख्या में अठारह हैं। फिर उपनिषदों में इनकी और व्याख्या की गई है, जिनकी संख्या १०८ है। *उपनिषदों* का सार *वेदान्त-सूत्र* में दिया गया है और *वेदान्त-सूत्र* के उसी रचयिता द्वारा उसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* में की गयी है, यह प्रक्रिया है। इसलिए *भागवत* सम्पूर्ण वैदिक-ज्ञान का सार है।

नैमिषारण्य उत्तरी भारत का एक अत्यन्त प्रसिद्ध और पवित्र वन है, जहाँ प्रायः सभी ऋषि और तपस्वी आध्यात्मिक उन्नति

में सहायता प्राप्त करने के लिए जाते हैं। इस युग में उसी वन में सर्वप्रथम *श्रीमद्भागवत* की चर्चा की गयी थी। इसकी चर्चा के दौरान श्रोताओं ने महान् सन्त श्री सूत गोस्वामी से पूछा था कृष्ण अपने परमधाम में अब वापस चले गये हैं, तो यह दिव्य ज्ञान अब कहाँ स्थित है? यह प्रश्न उठाया गया था। *भगवद्गीता* का उपदेश स्वयं कृष्ण ने दिया था और इसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग ध्यानयोग और भक्तियोग का वर्णन किया गया है। अब यह जिज्ञासा की गयी थी कि जब कृष्ण चले गये हैं तो आध्यात्मिक ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है। उत्तर मिला था कि कृष्ण वापस जाते समय हमारे लिए *श्रीमद्भागवत* छोड़ गए हैं। यह भगवान् कृष्ण का प्रतिनिधि—शब्दावतार है। जैसे कृष्ण *गीता* से भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार *श्रीमद्भागवत* भी कृष्ण से भिन्न नहीं है। वे पूर्ण हैं। कृष्ण और कृष्ण शब्द भिन्न नहीं हैं। कृष्ण और कृष्ण का नाम भी भिन्न नहीं हैं। कृष्ण और उनका रूप भी भिन्न नहीं हैं। यह पूर्ण है। इसका साक्षात्कार करना पड़ता है।

भगवद्गीता और *श्रीमद्भागवत* कृष्ण के शब्दावतार हैं। *श्रीमद्भागवत* कृष्ण का साहित्यिक अवतार भी है और यह वैदिक ज्ञान का फल है। आपने यह अनुभव किया होगा कि "शुक" नाम का एक पक्षी होता है। उसका शरीर हरा और चोंच लाल होती है। शुक की यह विशेष योग्यता है कि आप जो भी कहें वह उसकी नकल कर सकता है। वह शुक पक्षी पके फल का स्पर्श करता है और यह स्वाभाविक है कि यदि फल वृक्ष पर पकता है तो वह बहुत ही स्वादिष्ट हो जाता है। यदि फल शुक द्वारा चख लिया जाता है तो फल और भी अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। यह प्रकृति का नियम है। अतः यहाँ ऐसा कहा ग

है कि यह *श्रीमद्भागवत* वैदिक ज्ञान के पके हुए फल के समान है। और साथ ही साथ सूत जी के गुरु श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा इसका स्पर्श किया गया है। "शुक" का अर्थ तोता होता है।

श्रीमद्भागवत की पहली व्याख्या श्रील शुकदेव गोस्वामी ने की थी, यद्यपि इसके रचयिता उनके पिता श्रील व्यासदेव हैं। श्रील शुकदेव गोस्वामी जब मात्र सोलह वर्ष के थे तब उन्हें *भागवत* की शिक्षा दी गयी थी और वे ज्ञान से प्रकाशित हो गये थे। वे परम-तत्त्व के निराकार सिद्धान्त के अनुसार पहले से ही मुक्त हो गये थे। परन्तु अपने पिता से *श्रीमद्भागवत* का श्रवण करने के पश्चात् वे कृष्ण की लीलाओं के आकृष्ट हो गये, तथा वे *श्रीमद्भागवत* के प्रचारक बन गये। सर्वप्रथम उन्होंने महाराज परीक्षित के सामने इसकी व्याख्या प्रस्तुत की। महाराज परीक्षित का संक्षिप्त इतिहास ऐसा है कि वे एक पुण्यवान् राजा थे, परन्तु दुर्भाग्य से उनके किसी कार्य से अप्रसन्न होकर एक ब्राह्मण बालक ने उन्हें शाप दे दिया कि सात दिन के अन्दर ही उनकी मृत्यु हो जाएगी। उन दिनों यदि कोई ब्राह्मण किसी को शाप देता था तो वह सत्य सिद्ध होता था। उनमें शाप या वरदान देने की शक्ति हुआ करती थी।

अतः इस प्रकार महाराज परीक्षित यह जान गये कि उन्हें एक सप्ताह के अन्तर्गत ही मरना होगा, और उन्होंने स्वयं को इसके लिए तैयार कर लिया। उन्होंने अपना राज्य त्याग दिया तथा अपने पुत्र महाराज जनमेजय को इसे सौंप दिया। स्वयं वे अपने परिवार को छोड़कर दिल्ली के पास गंगा-तट पर आकर बैठ गये। वास्तव में यह गंगा नहीं, यमुना नदी थी। चूँकि वे एक महान् राजा थे, अनेक विद्वान् ऋषि उनके पास आए।

परीक्षित ने वहाँ उपस्थित सभी ऋषियों से पूछा, "मेरा क्या कर्त्तव्य है? मैं सात दिनों में ही मरने वाला हूँ, अब मेरा क्या कर्त्तव्य है? आप सब विद्वान् ऋषि हैं, कृपया मुझे आदेश दें। किसी ने कहा आप योगाभ्यास करें, किसी ने कहा—ज्ञान प्राप्त करें। सबकी अलग-अलग राय थी। इसी समय श्रील शुकदेव गोस्वामी ने वन में प्रवेश किया। यद्यपि श्रील शुकदेव गोस्वामी की आयु उस समय मात्र सोलह वर्ष थी, फिर भी वे इतने विद्वान् और ख्यातिप्राप्त थे कि सभी वृद्ध ऋषि यहाँ तक कि उनके पिता व्यासदेव भी, उनके सम्मान में उठ खड़े हुए। वे इतने विद्वान् थे। अतः जैसे ही वे आए, सब इस बात पर सहमत हो गये कि अब शुकदेव गोस्वामी आ गए हैं, वे राजा के कर्त्तव्य का निर्णय करेंगे हम उन्हें अपना प्रतिनिधि नियुक्त करते हैं।

इस प्रकार शुकदेव गोस्वामी को सबकी ओर से बोलने का अधिकार दे दिया गया। उनसे भी पूछा गया, "मेरा क्या कर्त्तव्य है? मेरा यह परम सौभाग्य है कि आप इस महत्त्वपूर्ण घड़ी पर पधारे हैं। कृपया मुझे मेरे कर्त्तव्य के बारे में बताएँ।"

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, "अच्छा, मैं आपके समक्ष *श्रीमद्भागवत* की व्याख्या करूँगा।" वहाँ उपस्थित सभी विद्वान् इससे सहमत हो गये।

श्रीमद्भागवत सर्वप्रथम श्रील शुकदेव गोस्वामी द्वारा कही गई थी, इसलिए ऐसा कहा गया है कि जिस प्रकार तोता पके फल को स्पर्श करता है और वह फल अत्यधिक स्वादिष्ट हो जाता है उसी प्रकार, सर्वप्रथम श्रील शुकदेव गोस्वामी के स्पर्श किए जाने पर यह श्रीमद्भागवत और भी अधिक रोचक हो गया है।

बात यह है कि कोई भी वैदिक साहित्य विशेषकर *श्रीमद्भागवत*

और *गीता* जैसे ग्रन्थ आत्म-साक्षात्कार प्राप्त महात्माओं द्वारा जिस रूप में कहे गए हैं, इन्हें उसी रूप में अध्ययन करना चाहिए। विशेष रूप से वह साहित्य जिसे वैष्णव साहित्य कहा जाता है, अभक्त से नहीं सुनना चाहिए। इस बात पर मैं ने कई बार बल दिया है। अभक्त, मीमांसक, सकाम कर्मी, ध्यानी या योगी भगवत्-ज्ञान की व्याख्या नहीं कर सकते। एक अन्य महान् सन्त सनातन गोस्वामी ने भी विशेष रूप से यह कहा है: जो भक्ति मार्ग में नहीं हैं, भगवान् से रहित हैं, जिन्हें भगवान् में श्रद्धा नहीं, ऐसे लोगों को *भगवद्गीता* और *श्रीमद्भागवत* या अन्य *भगवत्* सम्बन्धी साहित्य पर प्रवचन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। तो यह बात नहीं है कि कोई भी व्यक्ति *भागवत* या *गीता* पर प्रवचन दे सकता है और हमें उसे सुनना पड़ेगा। नहीं, विशेष कर सनातन गोस्वामी ने इसके लिए निषेध किया है। हमें भगवान् के विषय में किसी भी ऐसे व्यक्ति से श्रवण नहीं करना चाहिए जो शुद्ध न हो।

कोई पूछ सकता है आप किस तरह कृष्ण की वाणी को कलंकित कर सकते जबकि यह वाणी स्वाभाविक रूप से दिव्य रूप में शुद्ध है। किसी अभक्त से कृष्ण की वाणी सुनने में क्या दोष है? यह प्रश्न पूछा जा सकता है। इसके बारे में एक उदाहरण दिया गया है। दूध कितना भी अच्छा और पौष्टिक क्यों न हो, किन्तु साँप के स्पर्श से तुरन्त ही विषैला हो जाता है। साँप बहुत इर्ष्यालु होता है। उसके काटते ही मनुष्य अनावश्यक रूप से तुरन्त मर जाता है। इसीलिए उसे सभी जीवों में क्रूरतम जीव कहा जाता है। शास्त्रों में अहिंसा का विधान है, परन्तु साँप या बिच्छू को मार डालने की अनुमति दी गई है। आप यह नहीं

कह सकते कि दूध तो पौष्टिक है, इसलिए हम पी सकते हैं। सर्प के छू लेने से क्या हानि है? नहीं, इसका परिणाम होगा—मृत्यु। हमें कम से कम *भगवद्गीता* और *श्रीमद्भागवत* का उपदेश उन लोगों से नहीं सुनना चाहिए जो भगवान् के भक्त नहीं हैं; जिन्होंने भगवान् का साक्षात्कार नहीं किया है और जो लोग उन के प्रति द्वेष भाव रखते हैं, उनका स्पर्श इसे विषाक्त कर देता है। भगवान् की वाणी सदैव पवित्र होती है, पर जैसे ही सर्प सदृश अभक्त से इसका स्पर्श हो जाता है, तब व्यक्ति को इसके श्रवण के विषय में बहुत सावधान होना चाहिए।

श्रीमद्भागवत में संकेत किया गया है कि ज्योंही श्रील शुकदेव जी ने इसका स्पर्श किया, यह रुचिकर हो गया। यही विशेषता है। मूलतः यह वैदिक ज्ञान का परिपक्व फल है, परन्तु साथ ही यह श्रील शुकदेव गोस्वामी का स्पर्श पा चुका है।

भगवान् योग के परम लक्ष्य तथा दिव्य आनन्द के निधि हैं। वे स्वयं को अपने भक्तों के सामने ही प्रकट करते हैं तथा उनके भक्तों की कृपा से ही सभी उनकी निकट संग का रसास्वादन कर सकते हैं।



९

वास्तविक शान्ति-सूत्र

प्रत्येक जीव शान्ति की खोज में है। यही अस्तित्व के लिए संघर्ष है। प्रत्येक जीव, जलचर से लेकर मानव की उच्चतम योनि तक—चींटी से लेकर सृष्टि के प्रथम प्राणी ब्रह्मा तक—शान्ति की खोज में है। यही मुख्य उद्देश्य है भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने कहा था कि जो व्यक्ति पूर्ण रूप से कृष्णभावनामृत में है, केवल वही शान्त व्यक्ति है, क्योंकि उसकी कोई माँग नहीं है। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति की यही विशेषता है। वह अकाम है। अकाम का अर्थ है, वे व्यक्ति जिनकी कोई कामना नहीं है और जो आत्मनिर्भर हैं। उनकी कोई जिज्ञासा नहीं है और जो पूर्णतः शान्त हैं। वे कौन हैं? वे कृष्णभावनामृत में स्थित भक्त हैं।

अन्य प्राणी तीन श्रेणियों में आते हैं। पहली श्रेणी है, भुक्ति अर्थात् वे व्यक्ति जो भौतिक सुख और विषय भोगों के लिए लोलुप हैं। ये व्यक्ति खाना, पीना और भौतिक आनन्द लूटना चाहते हैं। शरीर के अनुसार आनन्द के भी कई प्रकार हैं। लोग इस लोक में, दूसरे लोक में, यहाँ, वहाँ और सर्वत्र इन्द्रिय सुख की खोज में भटक रहे हैं। इनका मुख्य उद्देश्य इन्द्रियों को सन्तुष्ट करना है। इसे भुक्ति कहते हैं। दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत वे लोग आते हैं, जो इन्द्रिय-तृप्ति से थक चुके हैं या निराश हो चुके हैं और इसलिए इस भौतिक बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं। इसके बाद वे लोग आते हैं, जो ज्ञान की खोज में परम सत्य क्या है इस विषय में

मानसिक कल्पनाएँ करते हैं। इस तरह कुछ ऐसे लोग हैं जो इन्द्रि तुष्टि चाहते है और कुछ लोग ऐसे हैं जो मोक्ष के अभिलाषी और मुक्ति चाहते हैं। मोक्षवादी लोगों की भी कुछ कामना है—भौति बन्धन से छुटकारा पाने की। फिर कुछ ऐसे लोग हैं, जो योग हैं। ये लोग यौगिक सिद्धि की खोज में हैं। यौगिक सिद्धि के आ प्रकार हैं, जिनकी प्राप्ति से मनुष्य में यह क्षमता आ जाती है वह सूक्ष्म से सूक्ष्म या भारी से भारी आकार ग्रहण कर सके अपनी इच्छानुसार कोई भी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर सके। सामा व्यक्ति जो कि इन्द्रिय-तृप्ति के अभिलाषी हैं तथा वे लोग जो मोक्षाकां हैं साथ ही जो यौगिक सिद्धि की प्राप्ति में संलग्न हैं, इन स की कुछ न कुछ माँग होती है। किन्तु भक्तों की क्या स्थिति है उनकी कोई माँग नहीं होती। क्योंकि वे केवल भगवान् कृष्ण सेवा करना चाहते हैं, वे भगवान् कृष्ण की आज्ञा की प्रतीक्षा क हैं। यही उनकी संतुष्टि है। यदि कृष्ण अपने भक्तों को नरक भेजना चाहें तो वे उसके लिए भी तैयार रहते हैं। और यदि कृ कहते हैं, "तुम मेरे पास आओ" तो वे जाने के लिए तैयार र हैं। उनकी कोई कामना नहीं होती। यह पूर्णता की अवस्था है।

एक बहुत अच्छा श्लोक है, जिसमें एक भक्त प्रार्थना करता है-

"मेरे प्रिय भगवन्! मैं अपने मन की सभी कामनाओं से मु होकर केवल आपकी भावना में ही, कृष्णभावनाभावित होकर रहूँगा वास्तव में चूँकि हम भौतिक जगत् के बन्धन में हैं, इसलिए हम अनेक कामनाएँ हैं। कुछ लोग इन्द्रिय-तृप्ति की कामना करते हैं कुछ लोग जो अधिक उन्नत हैं, मानसिक सन्तोष पाना चाहते तथा जो लोग और अधिक परिष्कृत हैं, वे इस दुनिया में अ शक्ति के कुछ चमत्कार दिखाना चाहते हैं। ये लोग भिन्न-भिन्न स्थिति

में भौतिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं। इसलिए कृष्णभावनाभावित व्यक्ति भगवान् से प्रार्थना करता है, "मेरे प्रिय भगवान्, कब वह क्षण आएगा, जब मैं आपके विचारों में या आपकी सेवा में पूरी तरह तल्लीन हो सकूँगा।" "आपके विचार" अमूर्त और मनगढ़ंत अनुमान नहीं, बल्कि यह विचार का व्यावहारिक प्रकार है। "मैं शान्त हो जाऊँगा" और मन का सारा कपट जाल—मैं यह चाहता हूँ, मैं वह चाहता हूँ—पूरी तरह से मिट जाएगा।

हम मानसिक तल पर मंडराते रहते हैं। हमने अपने मन को पूरा अधिकार दे रखा है। और मन हमें भटका रहा है—"इधर चलो, उधर चलो।" व्यक्ति को यह सारी मूर्खता बन्द करनी होगी। "मैं केवल आपका सनातन सेवक बना रहूँगा। तथा मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा, क्योंकि मैंने अपने स्वामी को प्राप्त कर लिया है।" वे सभी लोग जो कृष्णभावनाभावित नहीं हैं, मार्ग-दर्शन से रहित हैं। वे स्वयं अपने पथ-प्रदर्शक हैं। जो व्यक्ति कृष्णभावनाभावित हैं, उनके पथ-प्रदर्शक स्वयं श्रीभगवान् हैं, इसलिए उन्हें कोई भय नहीं है। जैसे जब तक बच्चा अपने माता-पिता की देखभाल में रहता है, उसे कोई भय नहीं होता, परन्तु जैसे ही वह स्वतन्त्र होता है, उसके सामने अनेक बाधाएँ आने लगती हैं। यह भोंडा उदाहरण दिया गया है, परन्तु ठीक इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति सभी प्रकार की मनगढ़न्त कपट व्याख्या से मुक्त होकर चौबीसों घण्टे शत-प्रतिशत कृष्णभावनामृत में संलग्न रहता है तो वह तत्काल ही शान्ति प्राप्त कर लेता है। यही शान्ति है।

इसलिए चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि जो लोग कृष्णभावनाभावित हैं वे अकाम होने के कारण वास्तविक शान्ति को प्राप्त करते हैं। जिन लोगों की सारी प्रवृत्ति इन्द्रिय-तृप्ति मोक्ष या यौगिक सिद्धियों

के लिए ही है वे इस चिन्ता से सदैव परिपूर्ण रहते हैं। व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि जब तक वह चिन्ता से परिपूर्ण रहता है तब तक वह भौतिक प्रकृति की पकड़ में रहता है। जैसे ही वह सभी चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है तो उसे जान लेना चाहिए कि वह अब मुक्त है। यह भयपूर्ण चिन्ता इसलिए रहती है, क्योंकि हम परम नियन्ता भगवान् कृष्ण को नहीं जानते। इसके स्थान पर हमारी अलग-अलग धारणाएँ होती हैं और यही कारण है कि हम हमेशा चिन्तित रहते हैं।

इसके अनेक उदाहरण हैं, जैसे प्रह्लाद महाराज। वे मात्र पाँच वर्ष के नन्हें से प्रिय बालक थे, परन्तु भगवान् के भक्त होने के कारण उनके पिता उनके शत्रु हो गये थे। संसार की यही रीति है। जैसे ही कोई व्यक्ति भगवान् का भक्त बनता है वैसे ही उसका कई कठिनाइयों से सामना होता है। परन्तु वे बाधाएँ उस व्यक्ति को रोक नहीं पायेगी अथवा उसके पथ में रुकावट नहीं डाल सकती। हमें व्यक्तिगत रूप से कृष्णभावनाभावित होने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। अन्यथा केवल माया का ही राज्य रहेगा। ज्योंही माया यह देखेगी, "यह है एक जीव जो मेरे चंगुल से बाहर जा रहा है।" तब वह हमें हराने का प्रयास करेगी। जैसे ही व्यक्ति कृष्णभावनाभावित होता है और अपने-आपको पूरी तरह से भगवान् के प्रति समर्पित कर देता है त्योंही उसे इस माया से कोई भय नहीं होता। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति पूर्णतः शान्त व्यक्ति होता है।

इस संसार में हर कोई शान्ति चाहता है, किन्तु शान्ति-सैनि नहीं जानते कि शान्ति कैसे प्राप्त की जाय, परन्तु वे शान्ति चा हैं। मैंने "केंटरबरी के आर्च-विशप" का एक भाषण पढ़ा था, जि उन्होंने कहा था, "आप केवल भगवान् का राज्य चाहते हैं, भग

नहीं।'' यही हमारा दोष है, यदि आप शान्ति चाहते हैं तो यह मान लें कि शान्ति का अर्थ है, भगवान् को जानना। *भगवद्गीता* में यही कहा गया है। जब तक आप भगवान् कृष्ण के सम्पर्क में नहीं आते, आपको शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिए हमारा शान्ति का सूत्र अलग है। वास्तविक शान्ति का सूत्र है कि हमें यह जानना चाहिए कि भगवान् संयुक्त राज्य अमेरिका सहित सारी सृष्टि का स्वामी है; वह रूस और चीन का भी स्वामी है वह भारत का भी स्वामी है, प्रत्येक वस्तु का स्वामी है। परन्तु क्योंकि हम दावा करते हैं कि स्वामी हम हैं, बस इसी से लड़ाई-झगड़े होते हैं। कलह होता है, मतभेद होता है और इस प्रकार शान्ति कैसे रह सकती है?

सर्वप्रथम हमें यह मानना होगा कि भगवान् सबका स्वामी है। हम ५० या १०० वर्ष के लिए मेहमान हैं। हमारा आना-जाना लगा रहता है। जब तक व्यक्ति यहाँ रहता है इसी विचार में खोया रहता है, ''यह मेरी भूमि है, यह मेरा परिवार है। यह मेरा शरीर है। यह मेरी सम्पत्ति है।'' और जब भगवान् का आदेश मिलता है तो हमें अपना घर, अपनी सम्पत्ति पाना, अपना परिवार, अपना शरीर, पैसा और अपना बैंक में जमा धन यहीं छोड़कर कहीं और जाना पड़ता है। हम भौतिक प्रकृति के नियन्त्रण में हैं और वह हमें अनेक प्रकार के शरीर प्रदान करती है: ''अब प्रिय महोदय, आप यह शरीर लीजिए।'' हम अमरीकी शरीर, भारतीय शरीर, चीनी शरीर, बिल्ली या कुत्ते का शरीर स्वीकार करते हैं। मैं इस शरीर का भी स्वामी नहीं हूँ, फिर भी कहता हूँ कि मैं यह शरीर हूँ। वास्तव में यह अज्ञान है। वह शान्ति कैसे प्राप्त कर सकता है? शान्ति तभी प्राप्त हो सकती है, जब वह समझे कि भगवान् ही

सभी वस्तुओं के स्वामी हैं। किसी का मित्र, किसी की माँ, किसी का नाना, और राष्ट्रपति सभी समय के मेहमान हैं। जब मानव द्वारा यह ज्ञान स्वीकार कर लिया जाएगा तब शान्ति होगी।

हम ऐसे मित्र की खोज में हैं, जो हमें शान्ति दे सके। वह मित्र है—भगवान् कृष्ण। यदि हम उनसे मित्रता कर लें तो आप पाएँगे कि सभी हमारे मित्र हो गये हैं। चूँकि भगवान् सबके हृदय में हैं, इसलिए यदि आप भगवान् से मित्रता करते हैं तो वह अन्तर्मन में आदेश देगा और आप से सब लोग मैत्रीपूर्ण ढंग से व्यवहार करने लगेंगे। यदि आप पुलिस आयुक्त से मित्रता करते हैं तो आपको कुछ लाभ प्राप्त होता है। यदि आप राष्ट्रपति निक्सन से मित्रता करेंगे तो हर व्यक्ति आपका मित्र बन जाएगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रपति के अधीन है। यदि आप किसी अधिकारी से कुछ चाहते हैं तो सीधे राष्ट्रपति निक्सन से कह दें और वे आदेश देंगे, "ठीक है उस व्यक्ति का ख्याल रखो।" तब हर बात का ख्याल रखा जा लगेगा। बस, भगवान् से मित्रता करने की कोशिश करें; प्रत्येक व्यक्ति आपका मित्र बन जाएगा। यदि सभी लोग इस अतिश्रेष्ठ सत को समझ लें कि भगवान् सबके मित्र हैं और वे ही परम स्वाम हैं तो सभी शान्ति प्राप्त कर लेंगे। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने यही समझाय है।

भगवद्गीता, *श्रीमद्भागवत*, *चैतन्य-चरितामृत* या अन्य वैदि साहित्य में या किसी दूसरे कर्म के साहित्य में यही सत्य प्रस्तु किया गया है। भगवान् स्वामी हैं। वे ही एकमात्र मित्र हैं। य आप यह समझ लेते हैं तो आप शान्ति प्राप्त कर लेंगे। यही शान् का सूत्र है। जैसे ही भगवान् की सम्पत्ति पर अतिक्रमण करने व प्रयास करेंगे उसे अपनी सम्पत्ति घोषित करेंगे तो आपके विरुद्ध भौति

प्रकृति द्वारा पुलिस कार्यवाही की जायेगी। आप स्वामी नहीं हैं। आप उतना ही रख सकते हैं जितना भगवान् ने आपके लिए नियत किया है।

आपका कार्य है स्वयं को पूर्ण कृष्णभावनामृत तक उन्नत करना। उससे अधिक और कुछ नहीं। यदि आप इस नियम का पालन नहीं करेंगे, आप इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करेंगे और अधिक भौतिक सुख लेना चाहेंगे तो आपको और अधिक दुःख उठाना पड़ेगा। भूलने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इसलिए चैतन्य महाप्रभु कहते हैं, ''कृष्णभावनाभावित भक्त की कोई कामना नहीं होती।'' इसीलिए वह शान्त रहता है।

कृष्णभावनामृत में जो हैं वे कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। वास्तव में मात्र कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही सदैव शान्त और निर्भय रहते हैं। न वे स्वर्ग में रहते हैं, न वे नरक में रहते हैं तथा न ही और कहीं। वे केवल कृष्ण के संग में रहते हैं। इसलिए उनके लिए बिना किसी भय के सर्वत्र वैकुण्ठ है। इसी प्रकार परमात्मा के रूप में भगवान् कृष्ण सर्वत्र निवास करते हैं। वे सूअर के हृदय में भी वास करते हैं। सूअर मल खाता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि चूँकि भगवान् कृष्ण सूअर के हृदय में रहते हैं, इसलिए वे भी इस दण्ड के भागी होते हैं। भगवान् और उनके भक्त सदैव भौतिक प्रकृति के गुणों से परे रहते हैं। पूर्णतः कृष्णभावनाभावित लोग बहुत कम होते हैं और वे सदैव शान्त रहते हैं। करोड़ों लोगों में ऐसा एक भी व्यक्ति ढूँढ़ना बहुत कठिन है, जो सच्चे अर्थों में कृष्णभावनाभावित हो। कृष्णभावनामृत की यह स्थिति बहुत कम देखने में आती है। परन्तु कृष्ण स्वयं चैतन्य महाप्रभु के रूप में वर्तमान समय की दयनीय स्थिति को देखकर सीधे मुक्त रूप से भगवत्-प्रेम

प्रदान कर रहे हैं।

फिर भी क्योंकि भगवत्-प्रेम मुक्त रूप से और सरलता से प्रदा किया जा रहा है, लोग इस ओर ध्यान नहीं देते। मेरे गुरु महारा कहा करते थे, "यदि आप एक लंगड़ा आम लें जो कि भारतव का प्रथम श्रेणी का सर्वोत्कृष्ट आम है, बहुत मूल्यवान्, अत्यन मधुर और अत्यन्त स्वादिष्ट है, तथा यदि आप इस आम को द्वार-द्व पर जाकर निःशुल्क बाँटने का प्रयास करें तो लोग सन्देह करेंग यह व्यक्ति लंगड़ा आम लेकर क्यों आया है? क्यों यह इसे निःशुल बाँटने का प्रयास कर रहा है? इसके पीछे अवश्य कोई उद्देश्य होगा। इसी प्रकार चैतन्य महाप्रभु कृष्णभावनामृत के इस लंगड़े आम व बहुत सस्ते में लोगों को बाँटते रहे। परन्तु लोग इतने मूर्ख हैं वे सोचते हैं "ओह! ये लोग सिर्फ हरे कृष्ण का कीर्तन कर हैं। इसमें क्या विशेष बात है? यह मूर्खों के लिए है। यह लोगों के लिए हैं जो मीमांसा नहीं कर सकते और जिन्हें क उच्च स्तर का ज्ञान नहीं है।" परन्तु बात यह नहीं है। यह क गया है, "लाखों करोड़ों लोगों में केवल कुछ ही कृष्णभावना में रुचि रखते हैं।" इस जानकारी की उपेक्षा नहीं करनी चाहि यह अति दुर्लभ है, तथा यदि आप कृष्णभावनामृत का अभ्य करते हैं तो आपका जीवन सफल हो जाएगा। आपके मानव-जी का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। कृष्णभावनामृत का यह बीज बहुत असाधा और मूल्यवान् है। चैतन्य महाप्रभु ने कहा था कि असंख्य ज चौरासी लाख योनियों के अन्तर्गत एक के पश्चात् दूसरी योनि भ्रमण व देहान्तरण करते हैं। इनमें से कोई एक ही ऐसा भाग्यव होगा जो दिव्य सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

कभी-कभी भगवान् के भक्त द्वार-द्वार जाते हैं। उनकी नीति ह

है कि वे भिक्षुक के रूप में जायें। इसलिए भारत में भिक्षुकों तथा विशेषतया संन्यासियों का अत्यन्त आदर किया जाता है। यदि कोई संन्यासी भिक्षा के लिए किसी के घर जाता है तो उसका अच्छी तरह आदर-सत्कार किया जाता है—"स्वामी जी, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" भक्त भिक्षुक में किसी विशेष वस्तु की माँग नहीं करता। परन्तु जो कुछ भी कोई दे सके, एक चपाती भी, वही उसे आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध कर देती है। जो अपने द्वार पर आने वाले शुद्ध भक्त को चपाती प्रदान करता है, वह आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध हो जाता है। जब कोई व्यक्ति आध्यात्मिक सम्पत्ति में उन्नत हो जाता है तब वह भक्तों का जितना हो सके उतना उत्तम स्वागत करता है। वैदिक प्रणाली के अनुसार यदि आपका शत्रु भी आपके घर आये तो उसका ऐसा स्वागत करना चाहिए कि आप भूल जाएँ कि आप उसके शत्रु हैं। भगवान् के लिए सर्वस्व त्याग करने वाले शुद्ध भक्त के आदर सत्कार की यह सामान्य रीति है।

ये आदेश गृहस्थों के लिए है। गृहस्थ को दोपहर के समय अपने घर से बाहर निकल आना चाहिए और भूखे व्यक्ति को भोजन कराने के लिए पुकार कर बुलाना चाहिए। यदि उसके पुकारने पर कोई नहीं आता है, तभी घर का मुखिया भोजन ग्रहण कर सकता है। मनुष्य को भगवत् परायण बनने की शिक्षा देने के लिए कई विधि-विधान हैं। ये अन्ध-विश्वास या अनावश्यक नहीं हैं। मानव को भगवत् परायण बनने की शिक्षा दी जानी चाहिए। क्योंकि वह भगवान् का अभिन्न अंश है, इसलिए उसे शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाता है। यह प्रशिक्षण इसलिए दिया जाता है, क्योंकि किसी न किसी दिन मनुष्य कृष्णभावनाभावित हो सकता है।

सभी वस्तुओं के स्वामी हैं। किसी का मित्र, किसी की माँ, किसी का नाना, और राष्ट्रपति सभी समय के मेहमान हैं। जब मानव द्वारा यह ज्ञान स्वीकार कर लिया जाएगा तब शान्ति होगी।

हम ऐसे मित्र की खोज में हैं, जो हमें शान्ति दे सके। वह मित्र है—भगवान् कृष्ण। यदि हम उनसे मित्रता कर लें तो आप पाएँगे कि सभी हमारे मित्र हो गये हैं। चूँकि भगवान् सबके हृदय में हैं, इसलिए यदि आप भगवान् से मित्रता करते हैं तो वह अन्तर्मन में आदेश देगा और आप से सब लोग मैत्रीपूर्ण ढंग से व्यवहार करने लगेंगे। यदि आप पुलिस आयुक्त से मित्रता करते हैं तो आपको कुछ लाभ प्राप्त होता है। यदि आप राष्ट्रपति निक्सन से मित्रता करेंगे तो हर व्यक्ति आपका मित्र बन जाएगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रपति के अधीन है। यदि आप किसी अधिकारी से कुछ चाहते हैं तो सीधे राष्ट्रपति निक्सन से कह दें और वे आदेश देंगे, "ठीक है उस व्यक्ति का ख्याल रखो।" तब हर बात का ख्याल रखा जाने लगेगा। बस, भगवान् से मित्रता करने की कोशिश करें; प्रत्येक व्यक्ति आपका मित्र बन जाएगा। यदि सभी लोग इस अतिश्रेष्ठ सत्य को समझ लें कि भगवान् सबके मित्र हैं और वे ही परम स्वामी हैं तो सभी शान्ति प्राप्त कर लेंगे। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने यही समझाया है।

भगवद्गीता, *श्रीमद्भागवत*, *चैतन्य-चरितामृत* या अन्य वैदिक साहित्य में या किसी दूसरे कर्म के साहित्य में यही सत्य प्रस्तुत किया गया है। भगवान् स्वामी हैं। वे ही एकमात्र मित्र हैं। यदि आप यह समझ लेते हैं तो आप शान्ति प्राप्त कर लेंगे। यही शान्ति का सूत्र है। जैसे ही भगवान् की सम्पत्ति पर अतिक्रमण करने का प्रयास करेंगे उसे अपनी सम्पत्ति घोषित करेंगे तो आपके विरुद्ध भौतिक

प्रकृति द्वारा पुलिस कार्यवाही की जायेगी। आप स्वामी नहीं हैं। आप उतना ही रख सकते हैं जितना भगवान् ने आपके लिए नियत किया है।

आपका कार्य है स्वयं को पूर्ण कृष्णभावनामृत तक उन्नत करना। उससे अधिक और कुछ नहीं। यदि आप इस नियम का पालन नहीं करेंगे, आप इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करेंगे और अधिक भौतिक सुख लेना चाहेंगे तो आपको और अधिक दुःख उठाना पड़ेगा। भूलने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इसलिए चैतन्य महाप्रभु कहते हैं, ''कृष्णभावनाभावित भक्त की कोई कामना नहीं होती।'' इसीलिए वह शान्त रहता है।

कृष्णभावनामृत में जो हैं वे कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। वास्तव में मात्र कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही सदैव शान्त और निर्भय रहते हैं। न वे स्वर्ग में रहते हैं, न वे नरक में रहते हैं तथा न ही और कहीं। वे केवल कृष्ण के संग में रहते हैं। इसलिए उनके लिए बिना किसी भय के सर्वत्र वैकुण्ठ है। इसी प्रकार परमात्मा के रूप में भगवान् कृष्ण सर्वत्र निवास करते हैं। वे सूअर के हृदय में भी वास करते हैं। सूअर मल खाता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि चूँकि भगवान् कृष्ण सूअर के हृदय में रहते हैं, इसलिए वे भी इस दण्ड के भागी होते हैं। भगवान् और उनके भक्त सदैव भौतिक प्रकृति के गुणों से परे रहते हैं। पूर्णतः कृष्णभावनाभावित लोग बहुत कम होते हैं और वे सदैव शान्त रहते हैं। करोड़ों लोगों में ऐसा एक भी व्यक्ति ढूँढ़ना बहुत कठिन है, जो सच्चे अर्थों में कृष्णभावनाभावित हो। कृष्णभावनामृत की यह स्थिति बहुत कम देखने में आती है। परन्तु कृष्ण स्वयं चैतन्य महाप्रभु के रूप में वर्तमान समय की दयनीय स्थिति को देखकर सीधे मुक्त रूप से भगवत्-प्रेम

प्रदान कर रहे हैं।

फिर भी क्योंकि भगवत्-प्रेम मुक्त रूप से और सरलता से प्रदान किया जा रहा है, लोग इस ओर ध्यान नहीं देते। मेरे गुरु महाराज कहा करते थे, "यदि आप एक लंगड़ा आम लें जो कि भारतव का प्रथम श्रेणी का सर्वोत्कृष्ट आम है, बहुत मूल्यवान्, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त स्वादिष्ट है, तथा यदि आप इस आम को द्वार-द्वा पर जाकर निःशुल्क बाँटने का प्रयास करें तो लोग सन्देह करेंगे यह व्यक्ति लंगड़ा आम लेकर क्यों आया है? क्यों यह इसे निःशुल्क बाँटने का प्रयास कर रहा है? इसके पीछे अवश्य कोई उद्देश्य होगा।" इसी प्रकार चैतन्य महाप्रभु कृष्णभावनामृत के इस लंगड़े आम क बहुत सस्ते में लोगों को बाँटते रहे। परन्तु लोग इतने मूर्ख हैं कि वे सोचते हैं "ओह! ये लोग सिर्फ हरे कृष्ण का कीर्तन कर र हैं। इसमें क्या विशेष बात है? यह मूर्खों के लिए है। यह उ लोगों के लिए हैं जो मीमांसा नहीं कर सकते और जिन्हें क उच्च स्तर का ज्ञान नहीं है।" परन्तु बात यह नहीं है। यह क गया है, "लाखों करोड़ों लोगों में केवल कुछ ही कृष्णभावनाम में रुचि रखते हैं।" इस जानकारी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए यह अति दुर्लभ है, तथा यदि आप कृष्णभावनामृत का अभ्य करते हैं तो आपका जीवन सफल हो जाएगा। आपके मानव-जी का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। कृष्णभावनामृत का यह बीज बहुत असाधा और मूल्यवान् है। चैतन्य महाप्रभु ने कहा था कि असंख्य ज चौरासी लाख योनियों के अन्तर्गत एक के पश्चात् दूसरी योनि भ्रमण व देहान्तरण करते हैं। इनमें से कोई एक ही ऐसा भाग्यव होगा जो दिव्य सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

कभी-कभी भगवान् के भक्त द्वार-द्वार जाते हैं। उनकी नीति ह

है कि वे भिक्षुक के रूप में जायें। इसलिए भारत में भिक्षुकों तथा विशेषतया संन्यासियों का अत्यन्त आदर किया जाता है। यदि कोई संन्यासी भिक्षा के लिए किसी के घर जाता है तो उसका अच्छी तरह आदर-सत्कार किया जाता है—"स्वामी जी, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" भक्त भिक्षुक में किसी विशेष वस्तु की माँग नहीं करता। परन्तु जो कुछ भी कोई दे सके, एक चपाती भी, वही उसे आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध कर देती है। जो अपने द्वार पर आने वाले शुद्ध भक्त को चपाती प्रदान करता है, वह आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध हो जाता है। जब कोई व्यक्ति आध्यात्मिक सम्पत्ति में उन्नत हो जाता है तब वह भक्तों का जितना हो सके उतना उत्तम स्वागत करता है। वैदिक प्रणाली के अनुसार यदि आपका शत्रु भी आपके घर आये तो उसका ऐसा स्वागत करना चाहिए कि आप भूल जाएँ कि आप उसके शत्रु हैं। भगवान् के लिए सर्वस्व त्याग करने वाले शुद्ध भक्त के आदर सत्कार की यह सामान्य रीति है।

ये आदेश गृहस्थों के लिए है। गृहस्थ को दोपहर के समय अपने घर से बाहर निकल आना चाहिए और भूखे व्यक्ति को भोजन कराने के लिए पुकार कर बुलाना चाहिए। यदि उसके पुकारने पर कोई नहीं आता है, तभी घर का मुखिया भोजन ग्रहण कर सकता है। मनुष्य को भगवत् परायण बनने की शिक्षा देने के लिए कई विधि-विधान हैं। ये अन्ध-विश्वास या अनावश्यक नहीं हैं। मानव को भगवत् परायण बनने की शिक्षा दी जानी चाहिए। क्योंकि वह भगवान् का अभिन्न अंश है, इसलिए उसे शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाता है। यह प्रशिक्षण इसलिए दिया जाता है, क्योंकि किसी न किसी दिन मनुष्य कृष्णभावनाभावित हो सकता है।

यदि संयोगवश, इस प्रशिक्षण के दौरान वह किसी ऐसे व्यक्ति से मिलता है जो संत-पुरुष हो और भगवान् का सच्चा भक्त हो, तो कैसे संपर्क से वह पवित्र हो जाता है। इसलिए चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि ऐसे भाग्यशाली लोग, जिन्होंने पिछले कर्मों से कुछ आध्यात्मिक सम्पत्ति अर्जित की थी, सच्चे भक्तों का सत्संग पाने के लिए उत्सुक रहते हैं। कृष्णभावनामृत का बीज गुरु और कृष्ण की कृपा से प्राप्त होता है। जब गुरु और भगवान् कृष्ण चाहेंगे कि इस व्यक्ति को कृष्णभावनामृत की प्राप्ति होनी चाहिए तब उसमें आध्यात्मिकता का बीज सुचारु रूप से फूट उठता है वह प्रामाणिक गुरु से भेंट करता है तथा गुरु महाराज की कृपा से वह कृष्णभावनामृत का बीज प्राप्त कर सकता है। यह उसकी आन्तरिक इच्छा होती है, "मैं ऐसा संग कहाँ प्राप्त कर सकता हूँ?" "मुझे यह बोध कहाँ प्राप्त होगा?"

यह शास्त्रोक्त प्रक्रिया है। आध्यात्मिक उन्नति की यह सामान्य प्रक्रिया है। कृष्ण आपके अन्तर्मन में हैं; जैसे ही वे यह देखते हैं कि आप निष्ठावान् हैं और उनकी खोज में हैं तो वे आपके पास प्रामाणिक गुरु भेज देते हैं। कृष्ण और गुरु के इस मिलन से मनुष्य को कृष्णभावनामृत के बीज की प्राप्ति होती है। बीज तो पहले से है। यदि आपके पास गुलाब का अच्छी किस्म का एक बीज है तो आपका क्या कर्तव्य है? यदि आपके पास किसी अच्छे पौधे का कोई बीज है तो आपका कर्तव्य है कि आप उसे बैंक की तिजोरी में बन्द न कर दें। आपका कर्तव्य है, उसे जमीन में बोना। आप उस बीज को कहाँ बोयेंगे? यदि आपको कृष्णभावनामृत का ज्ञान है तो उसे हृदय में बो दीजिए। सामान्य धरती पर नहीं, अपने हृदय की धरती पर बोइये। बीज बोने के बाद आप उ

पर पानी छिड़किये। यह छिड़काव श्रवण और कीर्तन का होगा। बीज को हृदय में बोकर उस पर थोडे से पानी का छिड़काव करें। धीरे-धीरे वह बढ़ने लगेगा।

यह प्रक्रिया इस विचार से बन्द नहीं कर देनी चाहिए कि चूँकि वह दीक्षित हो चुका है, इसलिए श्रवण और कीर्तन की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। यह निरन्तर जारी रहना चाहिए। यदि आप पौधे को पानी देना बन्द कर देंगे तो वह सूख जाएगा। उस पर कोई फल नहीं आएगा। इसी प्रकार यदि आप कृष्णभावनामृत में बहुत ऊपर भी उठ गये हों तो भी आप श्रवण और कीर्तन की प्रक्रिया को रोक नहीं सकते क्योंकि माया इतनी शक्तिशाली है कि जैसे ही वह देखेगी, ''ओह! अच्छा मौका हाथ आया है'', तो तुरन्त ही आप सूख जाएँगे। पानी डालने की क्रिया से ही कृष्णभावनामृत का पौधा बढ़ता है। यह कैसे बढ़ता है? हर पौधे की सीमा है। वह लगातार बढ़ता जाता है, लेकिन एक समय आता है जब वह बढ़ना बन्द कर देता है, किन्तु कृष्णभावनामृत के पौधे का इस भौतिक जगत् में कभी बढ़ना बन्द नहीं होता। क्योंकि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति भौतिक जगत् की किसी भी भौतिक सुविधा से सन्तुष्ट नहीं होता। यदि आप उसे सिद्धलोक भी भेजना चाहें, जहाँ के निवासी इतने शक्तिशाली और उन्नत हैं कि वे बिना वायुयान के आकाश में उड़ सकते हैं, तो भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा।

श्रीमद्भागवत के अनुसार सिद्धलोक नामक एक ग्रह है, जहाँ के निवासियों को एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर उड़ने के लिए वायुयान या आकाशयान की आवश्यकता नहीं होती। सिद्धलोक से ऊपर भी अनेक लोक हैं। मैंने पाया है कि आधुनिकतम मत प्रत्येक तारे को सूर्य मानता है और वे मानते हैं कि अनेक भिन्न-भिन्न सौर

मण्डल हैं; किन्तु वैदिक साहित्य के अनुसार अनेक ब्रह्माण्ड हैं जिनमे प्रत्येक का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। इस ब्रह्माण्ड की सीमा है अन्तिम बाह्य आकाश। आधुनिक विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि प्रत्येक नक्षत्र एक सूर्य है, किन्तु वैदिक साहित्य ऐसा नहीं कहता। वैदिक साहित्य हमें यह जानकारी देता है कि प्रत्येक ब्रह्माण्ड में केवल एक सू होता है। परन्तु ब्रह्माण्ड असंख्य होते हैं। इस प्रकार असंख्य सू और चन्द्र हैं। इस ब्रह्माण्ड का सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक कहलात है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि भले ही आप सर्वोच्च लोक पहुँच जाएँ, आपको वापस आना ही पड़ेगा। स्पुतनिक तथा अन्तरिक्ष यात्री बहुत ऊँचे पहुँच जाते हैं। और इस पृथ्वी पर लोग तालियाँ बजा हैं, पर वे थोड़े ही समय में फिर से वापस आ जाते हैं। व्यक्ति भले कितनी ही तालियाँ बजाएँ पर उससे अधिक वे कुछ नहीं क सकते। उसी प्रकार वे जो भौतिकतावादी हैं वे ब्रह्माजी के लोक ब्रह्मलोक तक ऊँचे जा सकते हैं। लेकिन वे जो कृष्णभावनाभावि हैं वे इसे भी अस्वीकार कर देंगे। वे लोग निराकार ब्रह्मज्योति क भी उपेक्षा कर देते हैं। वे उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देते।

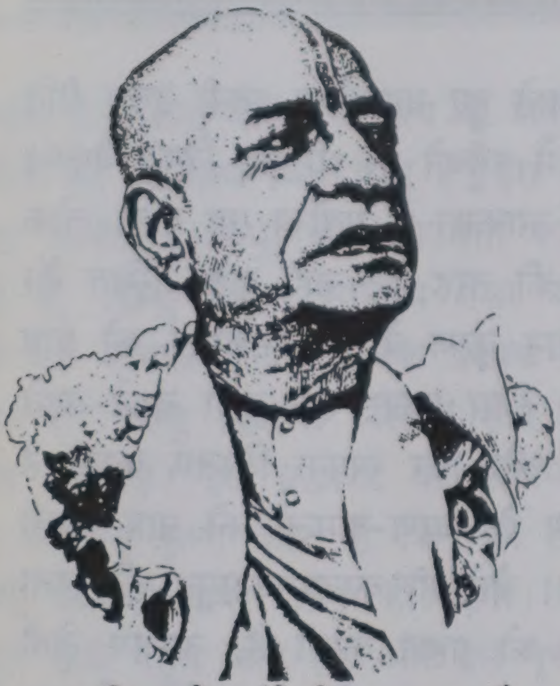
इस ब्रह्माण्ड का आवरण इस अन्तरिक्ष से, जिसमें हम रहते है कहीं अधिक मोटा है। ब्रह्माण्ड का बाहरी भाग उसके भीतरी आका का दस गुणा है, इसलिए व्यक्ति को यह आवरण भेदना पड़ है और तब वह "विराज" या कारण समुद्र में पहुँचता है। बौ दर्शन की पूर्णता है उस "विराज" तक पहुँच जाना। वैदिक भाषानुस जब यह भौतिक जगत् पूर्णतया नष्ट हो जाता है तब यह "विराज कहलाता है। किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति मात्र इस ब्रह्माण्ड क ही नहीं भेदता है, परन्तु उस तटस्थ स्थिति वाले कारण-समुद्र पहुँचने के पश्चात् वह आगे बढ़ता रहता है। ब्रह्मलोक से विरा

और विराज से दिव्य आकाश जाते हुए यह पौधा इतनी उत्तम रीति से बढ़ता है कि दिव्य आकाश में पहुँचने पर भी वह किसी वैकुण्ठ ग्रह से सन्तुष्ट नहीं होता। दिव्य आकाश में सर्वोच्च ग्रह कृष्ण-लोक है। इसका आकार कमल पुष्प की तरह है; जहाँ कृष्ण स्थित हैं। और वहीं जब यह पौधा भगवान् कृष्ण के चरण-कमल को प्राप्त करता है तो विश्रान्ति पाता है। जिस प्रकार एक लता बढ़ते-बढ़ते किसी वस्तु से लिपट जाती है और फिर अपना विस्तार करती है उसी प्रकार जब भक्तिलता कृष्ण के चरण-कमलों को प्राप्त करती है तब अपना विस्तार करती है। जैसे ही कृष्णभावनामृत की लता भगवान् कृष्ण के चरण-कमलों को ग्रहण करती है, आश्रय लेती है। अब मेरी यात्रा पूरी हुई, यहाँ अपना विस्तार करूँ। विस्तार करने का अर्थ है भगवान् कृष्ण के संग आनन्द लेना। वहीं भक्त सन्तुष्ट होते हैं।

इस लता को लगातार बढ़ते रहना पड़ता है; और इस प्रकार जो पहले से ही कृष्णभावनाभावित हैं यदि वे स्वाभाविक गति में बढ़ रहें तो इसी जीवन में इस लता के फल का रसास्वादन कर सकते हैं।

यदि आप इस कीर्तन और श्रवण की प्रक्रिया में लगे रहते हैं तो आप बढ़ते ही जाएँगे और वास्तव में भगवान् कृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करेंगे तथा वहाँ उनके संग का रसास्वादन करेंगे।

लेखक-परिचय



कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री
श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्
स्वामी प्रभुपाद ६९ वर्ष की
अवस्था में सन १९६५ में
अपने गुरु महाराज के
आदेशानुसार अंग्रेजी भाषी
विश्व में कृष्णभावनामृत का
प्रचार करने के लिए अमेरिका
गये। बारह वर्षों की अल्प
अवधि में उन्होंने वैदिक
साहित्य के अंग्रेजी अनुवाद और भाष्य के रूप में ५० से अधिक
ग्रंथरत्न प्रस्तुत किये। उनके द्वारा अंग्रेजी में अनूदित वैदिक ग्रंथ
उनकी अधिकृतता, गहराई व स्पष्टता के कारण विद्वत्समाज में
सम्मानप्राप्त तथा विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों के उच्चस्तरीय
पाठ्यक्रमों में मान्यताप्राप्त हैं। इसके साथ ही साथ कृष्णभावनामृत
का प्रचार करने हेतु वे सम्पूर्ण विश्व में निरन्तर भ्रमण करते रहे
सन १९६६ में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना
न्यूयॉर्क में की। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ को अपने
कुशल निर्देशन से सौ से अधिक मन्दिरों, आश्रमों, गुरुकुलों एवं
कृषि-समुदायों का एक बृहद् संगठन बना दिया। सन् १९७७ में
उन्होंने कृष्ण की प्रिय एवं पावन लीलाभूमि वृन्दावन में लौट कर
इस धरा-धाम से प्रयाण किया। उनके शिष्यगण उनके द्वारा
स्थापित आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं।


जो योगी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक
मेरे परायण है, अन्तःकरण
में मेरे विषय में सोचता
है और मेरी दिव्य
भक्तिमय सेवा में
लगा रहता है, वह
समस्त योगीयों
में सर्वोच्च है।